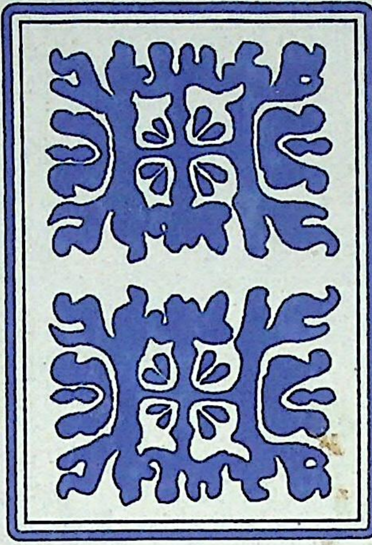


राष्ट्रिय संस्कृत संस्थानम्
नवदेहली

गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठग्रन्थमाला

॥ ६२ ॥

महाकवि श्री बिल्हण विरचिता

कर्णसुन्दरीनाटिका

सम्पादकः हिन्दी अनुवादकश्च

डॉ० अविनाशचन्द्र



RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN

(Under the auspices of the Ministry of Human resource & Development, Govt. of India)

New Delhi



Ganganath Jha
Kendriya Sanskrit Vidyapitha
TEXT SERIES



General Editor
Dr. G.C. Tripathi



No. 62

The

KARNASUNDARI NATIKA

of

BILHANA

Critically edited with Hindi translation

by

Dr. Avinash Chandra



ALLAHABAD
2003

राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्
(केन्द्रीयमानवसंसाधनविकासमन्त्रालयस्याङ्गभूतम्)
नव देहली

•

गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठग्रन्थमाला

प्रधानसम्पादकः
डॉ० गयाचरण त्रिपाठी

•

महाकवि श्री बिल्हण विरचिता

कर्णसुन्दरीनाटिका

•

सम्पादकः हिन्दी अनुवादकश्च
डॉ० अविनाश चन्द्र

•

श्रीगङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्
चन्द्रशेखर आज़ाद पार्क
प्रयागः
२००३ ई०

महाकविश्रीविल्हणविरचिता

कर्णसुन्दरीनाटिका

978-93-83135-84-4

•

समीक्षात्मकदृशा सुसंपाद्य हिन्दीअनुवादेन सनाथिता:

डॉ० अविनाशचन्द्रेण



श्रीगङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्
चन्द्रशेखर आज़ाद पार्क
प्रयागः
२००३ ई०

प्रकाशकः
डॉ० गयाचरण त्रिपाठी
प्राचार्यः
गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्
चन्द्रशेखर आज़ाद पार्क
इलाहाबाद—२

•

•

मूल्यम्

978-93-83135-84-4

•

मुद्रक :
शाकुन्तल मुद्रणालयः
३४, बलरामपुर हाउस
इलाहाबाद—२

Foreword

It is a matter of great personal satisfaction to me that an all-time New Hindi translation of a wonderful however less well-known Natika of a renowned poet of Kashmir is now being placed in the hands of the scholars and lovers of sanskrit literature. This Karnasundari a small dramatical work in four acts has been authored by the famous sanskrit poet Bilhan of Kashmir who has carved out an immortal place for himself in the realmes of sanskrit literature by his Historical kavya vikramankadeve caritam. The poet Bilhana was born in the village of khonmuh as per his own information which is not far from the present city of srinagar. His main period of literary activity lies in the second half of the 11th century some where around 1065 or so, this pandit, after having mastered a number of Discipiines in kashmir which was the most prominent centre of shastric learning in those days. Left kashmir on a long voyage of Indian sub-continent and perhaps never returned to kashmir, having been patronized by different kings and rulers of Gujarat and Karnataka.

Karna Sundari, the present dramatical work deals with the delecate love affair between the Chalukya king karna of Anahila pattan (1064-1094) who had assumed the title of Tribhuvana malla for himself and the Daughter of king Jaya kesh of Karnataka who is named here as Karnasundari, it appears that the name of the princess was changed after her marriage with king Karna. As some scholars have opined her original name was perhaps mayanalla which would be equivalent to sanskrit Madanika. The secret Romance of the two after undergoing a number of dramatical situations matures finally into marriage after the gracious permission of the chief queen not an unknown case as we know from the malavika-agnimitram of kalidasa.

According to the canons of sanskrit dramaturgy a natika has predominantly female characters with dialogues mostly in prakrit and is complete in four acts. So is the case also here. But instead of dialogues in prose Bilhan has preferred the use of verses of which more that 150 (one hundred and fifty) are found in this work.

Though the present Natika was published more than a hundred years ago in 1886 in the kavyamala series and was also translated in marathi (1891) and Telugu (1847) languages, yet nobody has till now endeavoured to prepare a Hindi translation of this work. This is also the reason why the text is not so well-known in the north Indian belt.

Dr. Avinash Chandra who had been the Head of Dept. of Sanskrit and Prakrit Languages at the C.M.P. Degree College of the University of Allahabad and a Research Professor in our Vidyapeeth under the sāstracūdamani scheme, felt himself to be specially called upon to undertake the tedious work of translating this Natika for the first time in Hindi. To Dr. Avinash Chandra goes the credit of translating it in a highly refined and sonorous language in a most beautiful and pleasing manner. He has not stopped at it but has also prepared a sort of critical edition of this text with the help of an additional manuscript which is preserved in the library of the Ganganath Jha Kendriya Vidyapeeth formerly known as G.N. Jha Research Institute, Allahabad. He has thus improved upon the textual readings and many of the cpaque and an unintelligible expressions have attained clarity in the present edition. He has further appended a very extensive and valuable introduction to the text which throws welcome light on the poet Bilhana his times his life and his literary activities. This has enhanced the value of the work to a great extent.

I congratulate Dr. Chandra for this wonderful work and earnestly hope that the sanskrit scholars shall welcome the publication of this work in this new form and an attire.

October 15th, 2001.

G.C. Tripathi
Principal
G.N. Jha Kendriya Sanskrit Vidyapeeth
Allahabad.

कर्णसुन्दरी नाटिका

विषय सूची

समर्पणम्



वात्सल्यात् दिद्दन् दीदीति नाम्नासम्बोध्यमाने, उच्चशिक्षासम्पन्ने, चित्रकलायांदक्षे, गृहकार्यप्रवीणे, परोपकारिणि, धर्माचरणानुरागिणि, आत्मनः सदाचरणेन उभयकुलनन्दिनि, स्वसन्तत्योः स्नेहमयि मातः, आवयोः प्रथमप्रसूनभूते, जेष्ठात्मजे सम्प्रति स्मृतिशेषे, विभाश्रीवास्तव्ये: तुभ्यं पुस्तकमिदं सस्नेहं समर्पयेति –

अविनाशचन्द्रः

महाकवि बिल्हण और उनकी काव्यसृष्टि

जन्मभूमिः स्वर्गादपि गरीयसी-

देवदारु, चीड़ और चिनार के विशाल वृक्षों की शान्त सुमधुर छायावाला, भूर्ज और वानीर वन का स्पर्श कर निरन्तर मन्द मन्द गति से चलते रहने वाले शीतल सुगन्धित समीर से सेवित, स्फटिकश्वेत निर्मल जलवाली नदियों और उत्तुङ्ग गिरिशिखरों से झरते रहने वाले झरनों के स्वरों से निनादित, नाना प्रकार के खगों के कलरव से कूजित, फल-फूल और मधु से भरा हुआ महर्षि कश्यप की साधना का स्थल कश्मीर सदा से भारतवर्ष का मुकुटमणि रहा है।

कश्मीर जैसी प्राकृतिक सुषमा, सम्पूर्ण धरती पर कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। यह धरती का स्वर्ग है जिसके सौन्दर्य पर मोहित होकर कभी मुग़ल सम्राट् जहाँगीर ने कहा था- "अगर धरती पर कहीं स्वर्ग है तो वह यहीं है, यहीं है, यहीं है।[१]"

आक्षितिज विस्तृत नीलाकाश, गगनचुम्बी पर्वतमालाएँ, दुग्ध धवल हिमाच्छादित शैलशिखर, मनोहारी उपत्यकाएँ, पठार के बीचों बीच चौड़े पाटवाली सर्पिल गति से निरन्तर प्रवहमान वितस्ता (झेलम) का जल, कहीं पर्वत-शिखर से बड़े वेग से बहने वाला अत्यन्त शीतल निर्मलनीर, कहीं पत्थरों से अठखेलियाँ करता हुआ फेनोज्वल, कहीं झर झर स्वन से दिशा विदिशाओं को गुंजा देने वाले प्रपात, कहीं पर लता-वितानों से युक्त तटवाली, कल कल शब्दों में मन्थर गति से बहने वाली नदियाँ, कहीं शान्त जलवाले कमल के फूलों से आच्छादित सरोवर, कहीं नयनाभिराम मछलियों की क्रीडास्थली बने हुए छोटे-बड़े कुण्ड, कहीं पतली धाराओं में मानों छिपकर बहने वाले कहीं स्थूल धारा के रूप में सहसा प्रकट होकर अपने स्वरूप मात्र से दर्शकों को चकित कर देने वाले पानी के सोते। जिधर देखिए जल ही जल, पानी ही पानी। सचमुच पानीदार सम्पूर्ण कश्मीर घाटी में जल का सौन्दर्य अपने निखरे हुए विविध रूपों में प्रकट होकर दर्शकों का मन मोहता रहता है।

१- अगर फिरदौस बर-रूए ज़मीं अस्त।
हमीं अस्तो, हमीं अस्तो, हमीं अस्त।।

निर्मल जल से सिञ्चित कश्मीर की शस्य श्यामला धरती पर सदैव हरी घास की मखमली कालीन बिछी रहती है। जिधर देखिए फूल ही फूल दिखलायी पड़ते हैं। रङ्गबिरङ्गे विविध रूपों वाले, सर्वत्र मादक सुगन्ध लुटाते रहने वाले फूल। सतरङ्गिनी तितलियों की भीड़ से घिरे हुए, भौंरों और मधुमक्खियों की गुंजार से आह्लादित शीतल समीरण के मन्द मन्द झोंकों से झूम-झूम उठ पड़ने वाले चितचोर फूल अपनी विपुलता में अनिर्वचनीय सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं।

कश्मीर की उर्वरा धरती प्रभूत मात्रा में अन्न-फल-मेवों और मधु का उत्पादन करती है। एक ओर धान और मक्के के हरे भरे खेत हैं तो दूसरी ओर क्यारियों में लगे हुए केसर के कोमल मूल्यवान पौधें हैं। ऋतुओं के अनुसार उपवनों में कभी सेब, खूबानी और अखरोट के फल उपलब्ध हैं तो कभी लताओं से लटकते हुए मधुर रस वाले द्राक्षाफलों की भरमार है।

सड़क के दोनों ओर प्रहरी की भाँति तन कर खड़े हुए सफेदे के पेड़ों तथा सघन छाया प्रदान करने वाले स्थूल तनों वाले चिनार के लम्बे लम्बे विशाल वृक्षों को देखकर ऐसा लगता है जैसे ये कश्मीर की प्राकृतिक सुषमा के प्रहरी हों।

प्रकृति के ऐसे छबिमय परिवेश वाले इस सारस्वत प्रदेश में गौरवर्ण के तीखे नाक नक्श वाले सुन्दर कश्मीरी समाज में प्रतिभाओं की कभी भी किसी काल में कमी नहीं रही।

विद्या का केन्द कश्मीर -

कश्मीर सदा से संस्कृत विद्या का केन्द्र रहा है। वेद, वेदाङ्ग, दर्शन तथा काव्य के विविध क्षेत्रों में कश्मीरी पण्डितों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। यदि मध्यकाल पर ही दृष्टिपात करें तब भी भामह, रुद्रट, रुद्रभट्ट, उद्भट, वामन राजानक रुय्यक, क्षेमेन्द्र, महिमभट्ट, कुन्तक, मुकुलभट्ट, आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त, मम्मट, वल्लभ देव, नरसिंह गुप्त, वामनाथ, भूतिराज, लक्ष्मण गुप्त, भट्ट इन्दुराज, भट्ट तौत, राजानक तिलक, जल्हण, कल्हण, कैय्यट, उव्वट, अल्लट, मंखक और जयरथ आदि कितने ही नाम गिनाये जा सकते हैं। ज्ञान विज्ञान के विविध स्तरों का उद्घाटन करके इन कश्मीरी मनीषियों ने अज्ञान के अन्धकार

में भटकती हुई मानवता के विकास मार्ग को निरन्तर आलोकित किया है। इस दृष्टि से शारदा के इन वरदपुत्रों का सारस्वत अवदान अमूल्य एवं अप्रतिम है।

कश्मीर जैसी प्राकृतिक सुषमा से सम्पन्न भूमि में काव्य की प्रेरणा सहज स्वाभाविक मानी जा सकती है। स्वयं बिल्हण ने लिखा है कि- "केशर के अङ्कुर तथा काव्य के अङ्कुरों में इतनी समानता है कि केसर की ही भाँति कविता के अङ्कुर कश्मीर प्रदेश को छोड़कर अन्यत्र प्रस्फुटित नहीं होते।"[1]

मध्यकाल में भी संस्कृत न केवल कश्मीर के विद्वानों के विचारों की वाहिका थी बल्कि जन साधारण में भी उसका पर्याप्त प्रचलन था। स्टाइन् (Stein) ने लिखा है कि उन दिनों संस्कृत का सर्वत्र प्रचलन था। यहाँ तक कि मुसलमानों में भी इस भाषा का प्रयोग आश्चर्यजनक रूप से प्रचलित था। श्रीनगर में बहाउद्दीन साहब (सन् १४८४ ई०) के कब्रिस्तान में स्थित कब्रों में लगी शिला पट्टिकाओं पर संस्कृत के लेख उत्कीर्ण हैं।

संस्कृत भाषा में अनेक कवियों ने कविताएँ लिखी हैं। कश्मीर के संस्कृत कवियों में 'बिल्हण' एक महत्त्वपूर्ण नाम है। 'बिल्हण' शब्द संस्कृत मूल का नहीं लगता। कदाचित इसका स्रोत दरद भाषा हो और उसी लोकभाषा में इस संज्ञा का कोई सहज अर्थ भी हो।

भारतीय इतिहास में ईसा की दशवीं शताब्दी और उसके बाद का समय इस्लाम के प्रवेश के कारण धार्मिक एवं सामाजिक उथलपुथल का काल माना जाता है। इन्हीं कारणों से बिल्हण की काव्यकृतियों को भी बहुत समय तक गुमनामी के अँधेरे में पड़े रहने की नियति झेलनी पड़ी। इस गुमनामी के अँधेरे से बिल्हण को ढूँढ़ निकालने का श्रेय आस्ट्रिया के प्रसिद्ध विद्वान डॉ० जार्ज ब्यूलर (Buehler) को है। वह भी लोगों की आशा के विपरीत कश्मीर के बाहर। सन् १८७७ ई० में डॉ० ब्यूलर अपने एक विद्वान् जर्मन मित्र डॉ० एच० याकोबी के साथ संस्कृत की पाण्डुलिपियों की तलाश में निकले थे। उसी यात्रा के दौरान तत्कालीन मध्यभारत की एक रियासत और अब राजस्थान में स्थित जैसलमेर

१ सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः।।

नामक नगर के जैन बृहद् ज्ञानकोशभण्डार में ताड़पत्रों पर लिखित बिल्हण रचित 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' की एक अत्यन्त प्राचीन पाण्डुलिपि मिल गयी। इसी 'विक्रमाङ्कदेव चरितम्' के अठारहें सर्ग में कवि ने अपनी जन्मभूमि, अपने वंश तथा अपने जीवन का विस्तार से वर्णन किया है।

जन्म-स्थान-

कश्मीर में महाराज प्रवरसेन द्वारा स्थापित अपनी अनेक विशेषताओं के कारण प्रसिद्ध प्रवरपुर नामक एक नगर था जो आजकल श्रीनगर के नाम से जाना जाता है। वहाँ से लगभग ढ़ाई या तीन कोस की दूरी पर स्थित जयवन नामक एक पठार है जहाँ नागराज तक्षक द्वारा स्थापित स्फटिक से निर्मल जल से लबालब भरा हुआ एक कुण्ड है। लोगों का विश्वास है कि धर्म को नष्ट करने में तत्पर कलि का शिरश्च्छेद करने के लिए वस्तुतः यह एक चक्र की ही भाँति है। इसके समीप ही दोनों ओर द्राक्षालताओं और केसर की क्यारियों से मण्डित, अत्यन्त रमणीय प्राकृतिक दृश्यों से सुशोभित खोनमुख नामक एक गाँव था। यह गाँव आज भी उसी जगह पर है जहाँ पर आज से लगभग एक हजार वर्ष पूर्व बिल्हण ने बतलाया था। यह दूसरी बात है कि आजकल उसे खुन्मोह कहने लगे हैं। एक अन्य संस्करण में उस गाँव का नाम खोनमास भी दिया गया है। ब्यूलर के मत में यही शुद्ध शब्द है। उनका कहना है कि लिपिकार अवश्य ही जैन रहा होगा जो 'स' और 'ख' का उच्चारण एक ही तरह करता रहा होगा। कश्मीरी उच्चारण-पद्धति के कारण भी यह हो सकता है। शारदा लिपि की विशेषताओं के कारण भी ऐसा होना सम्भव है। कल्हण भी प्रवरपुर से तीन कोस की दूरी पर बसे हुए जयवन के समीप खोनमुख की स्थिति स्वीकार करते हैं। ब्यूलर के मत में 'विक्रमाङ्कदेव चरितम्' में उल्लिखित खोनमुख गाँव वस्तुतः खोनमुष या खनमुष नाम से प्रसिद्ध है। डॉ० गया चरण त्रिपाठी का मत है कि- ''यह शब्द मूलतः 'षण्मुख' भी हो सकता है। लगता है वहाँ कभी कार्तिकेय का कोई प्रसिद्ध मन्दिर रहा होगा।'' कल्हण, कनिंघम और ब्यूलर आदि ने भाषा की अशुद्धि या अन्य प्रमाणों द्वारा इस गाँव का उचित नाम खोनमुख ही प्रमाणित किया है।

श्रीनगर-जम्मू राष्ट्रिय मार्ग पर खोनमुख उँचाई पर बसा हुआ है। यहाँ की भूमि समतल और मिट्टी नरम है। वहीं से बाँयी ओर पँडरेथा के निकट तक इस

प्रकार की उपजाऊ मिट्टी का क्षेत्र है। श्रीनगर से पाँच मील की दूरी पर ज्वालामुखी पर्वत के क्षेत्र में ज़ेवानीवुयान (Zevaniwuyan) तथा खरेवा (Khareva) नामक स्थान है। आजकल श्रीनगर से इन स्थानों की दूरी सात मील हो गयी है। कवि ने डेढ़ गव्यूति कह कर इस ओर स्वयं संकेत किया है। मोटे तौर पर एक गव्यूति चार मील के बराबर होता है। उपरिकथित तक्षक नाग भी सांस्कृतिक विजय के दौर से गुजरा है। इसके बिल्कुल पास आजकल एक कब्रिस्तान भी है। उस कुण्ड का जल अब उतना निर्मल और पारदर्शी नहीं रह गया है जितना कवि के जीवन-काल में रहा होगा। अब उसका स्वरूप भी चक्र की भाँति वृत्ताकार नहीं रह गया है। केसर के खेत और अंगूर की बाड़ियाँ आज भी हैं। भूमि उसी तरह उपजाऊ और हरी भरी है जिस तरह कवि के समय में रही होगी। हाँ, केवल वितस्ता (झेलम) अब यहाँ से कुछ दूर, लगभग दो या तीन मील दूर चली गयी है।

वंश परिचय-

ईस्वी सन् के प्रारम्भ से चार सौ वर्ष पूर्व कश्मीर में राजा गोपादित्य का शासन था। अपने समय के वह न्यायप्रिय शासक थे। अपनी प्रजा के कल्याण के लिए उन्होंने मध्यदेश से कौशिक गोत्रीय ऐसे अनेक ब्राह्मण परिवारों को आदर पूर्वक बुला कर अपने राज्य में बसा लिया था जो ब्रह्मचिन्तन परायण वृत्ति वाले होने के साथ ही साथ श्रौत एवं स्मार्त धार्मिक अनुष्ठानों में निरन्तर लगे रहते थे। कालान्तर में महान् पराक्रमशाली राजा अनन्त देव हुए जिन्होंने विजय प्राप्त कर गङ्गा नदी तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। उनकी धर्मपत्नी का नाम सुभटा था जो सुशीला होने के साथ ही साथ उदारमना एवं दानपरा भी थीं। राज़ा अनन्तदेव का भाई बड़ा विद्वान्, विष्णु-भक्त, विद्वानों का आश्रयदाता और लौहर दुर्ग का स्वामी था। बिल्हण के समय में प्रवरपुर के शासक कलश देव उपर्युक्त अनन्तदेव एवं सुभटा के पुत्र थे। कलश देव ने यमुना नदी को पार कर कुर्रुक्षेत्र तक अपना राज्य स्थापित किया था। राजा कलश देव के हर्षदेव, उत्कर्ष देव तथा विजय मल्ल नामक तीन सुयोग्य पुत्र थे। ऐसे सुयोग्य शासक की प्रजा शान्तिपूर्वक रह कर अपने सर्वतोमुखी विकास में लगी हुई थी। उस राज्य के पुरूष बड़े विद्वान् एवं नारियाँ नाटिकादि सभी कलाओं में दक्ष थीं।

राजा कलश देव के शासन काल में खोनमुख नामक गाँव में कौशिक गोत्रीय ब्राह्मणों के कुछ परिवार निवास करते थे। बिल्हण के प्रपितामह कौशिक गोत्रोत्पन्न मुक्ति कलश थे जो सकल वेद वेदाङ्गों के ज्ञाता पण्डितरत्न के रूप में प्रतिष्ठित थे। मुक्ति कलश के पुत्र राज कलश बड़े पराक्रमी, विद्वान् एवं दानी पुरुष थे। यही बिल्हण के पितामह थे। बिल्हण के पिता ज्येष्ठकलश पतञ्जलि महाभाष्य के विश्रुत विद्वान् थे। उन्होंने बड़े परिश्रम, सूक्ष्मता एवं गंभीरता से इस ग्रन्थ का अध्ययन किया था। कुछ लोगों का कहना है कि उन्होंने महाभाष्य पर एक टीका भी लिखी थी। महाभाष्य की व्याख्या के सम्बन्ध में बिल्हण ने लिखा है :-
''महाभाष्यव्याख्यां सकलजनवन्द्यां विदधतः, सदा यस्यच्छात्रैस्तिलकितमभूत्प्राङ्गणमपि।''

इस पर ब्यूलर की टिप्पणी ''जेष्ठकलशो महाभाष्यटीकां काञ्चन प्रणिनाय'' द्रष्टव्य है। इससे यह बात तो सिद्ध हो जाती है कि जेष्ठ कलश ने महाभाष्य पर टीका अवश्य लिखी होगी किन्तु इस विषय पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। कृष्णामाचारियर का मत है कि जेष्ठ कलश ने महाभाष्य पर कोई टीका नहीं लिखी थी अपितु वे महाभाष्य को पढ़ाने एवं उसकी व्याख्या करने में बड़े निपुण थे। संभवतः कवि की उक्ति का यही आशय रहा हो।

जेष्ठ कलश का विवाह नागा देवी से हुआ था। नागा देवी अत्यन्त रूपवती, गुणवती, परम विदुषी एवं पतिव्रता महिला थीं। जेष्ठ कलश अपने समय के उद्भट विद्वान थे जिनका वेद-वेदाङ्ग न्यायादि विषयों पर असाधारण अधिकार था। जेष्ठ कलश और नागा देवी के तीन पुत्र हुए। प्रथम इष्टराम, अनेक राज सभाओं में सम्मान प्राप्त करने वाले कवि एवं पण्डितशिरोमणि थे। दूसरे सुवर्ण के समान गौरवर्ण वाले वेद-वेदाङ्ग साहित्य आदि समस्त विद्याओं के आगार महाकवि बिल्हण थे। तीसरे आनन्द थे जो अपनी विद्वत्ता एवं कवित्व-शक्ति के लिए सर्वत्र जाने माने जाते थे। ऐसा लगता था जैसे सुविख्यात पिता जेष्ठ कलश ने अपने पुत्रों को संस्कृतप्रेम और सरस्वती की आराधना उत्तराधिकार के रूप में प्रदान कर दी हो।

शिक्षा-दीक्षा-

बिल्हण को परिवार में ही शिक्षा प्राप्त करने के अनेक साधन उपलब्ध थे।

परिवार के अतिरिक्त उस समय कश्मीर का सामान्य वातावरण भी संस्कृतमय होने के कारण शिक्षा के अनुकूल था। बिल्हण बचपन से ही कुशाग्र बुद्धि वाले थे। यज्ञोपवीत संस्कार के बाद से तो जैसे साक्षात् वाग्देवी ही उनके जिह्वाग्र पर आसीन सी हो गयी थीं। उनकी बुद्धि उत्तरोत्तर निर्मल तथा तीक्ष्ण होती गयी। यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् उनका विधिवत् विद्याध्ययन आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम उन्होंने साङ्गवेद (षडङ्गों सहित वेद) का अभ्यास किया। वैदिक व्याकरण का गम्भीर अनुशीलन करने के पश्चात् उन्होंने पतञ्जलि के महाभाष्य का क्षोद-क्षेमपूर्ण अध्ययन किया। साहित्य का तो उन्होंने इतना प्रगाढ़ अध्ययन किया कि साहित्य विद्या ही उनकी चेतना बन गयी थी। इस प्रकार बिल्हण ने कश्मीर में ही वेद, शास्त्र तथा साहित्य का अध्ययन सम्पन्न किया और राजा कलश देव के शासन काल में ही वे अपनी जन्मभूमि छोड़कर देशाटन पर निकल पड़े।

देशाटन-

कौतूहल से प्रेरित बिल्हण को बाणभट्ट की ही भाँति देश-देशान्तरों को घूम कर देखना पसन्द था। वैसे भी पर्यटन सदा से शिक्षा का एक उत्कृष्ट एवं शक्तिशाली साधन माना जाता रहा है। ब्यूलर का विचार है कि बिल्हण सन् १०६२ ई० से १०६५ ई० के बीच ही कश्मीर से निकल पड़े होंगे। युवावस्था में अनेक देशों को देखने के कुतूहल से उन्होंने मथुरा, वृन्दावन, कन्नौज, काशी, प्रयाग, अयोध्या, डाहल, धारा नगर, गुर्जर देश, सोमनाथ, पत्तन, सेतुबन्ध (रामेश्वर) आदि स्थानों का भ्रमण किया। मथुरा-वृन्दावन में उन्होंने वहाँ के पण्डितों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। वहाँ से वह कान्यकुब्ज (कन्नौज) गए। इन सभी स्थानों पर उन्होंने अपनी अभूतपूर्व प्रतिभा द्वारा सबको आश्चर्य चकित कर दिया। इस प्रकार उनके यश का विस्तार भी होने लगा। कन्नौज से प्रयाग होते हुए वे काशी पहुँचे जहाँ पर डाहल के राजा लक्ष्मीकर्ण के दरबार में कुछ समय तक रहे। स्मरणीय है कि कलचुरि अथवा हैहयवंशीय डाहल (चेदि देशाधिपति) लक्ष्मीकर्ण ने लगभग सन् १०४१ ई० से १०७१ ई० तक राज्य किया था। इस उत्कृष्ट प्रतापशाली राजा के राज्य में प्रजा बहुत सुखी थी। उसके वंश की प्राचीन राजधानी त्रिपुरी नगरी थी। उन्होंने दूसरी राजधानी काशी में बनायी थी। इस विषय में फार्वस महोदय द्वारा लिखित 'रासमाला' नामक ग्रन्थ में इस राजा की

विपुल विभूति तथा धन-धान्य पूर्ण राजधानी काशी का वर्णन उपलब्ध है। बिल्हण ने अपनी काव्यप्रतिभा एवं विद्वत्ता से लक्ष्मीकर्ण को आकर्षित कर लिया और उन्हीं के दरबार में आयोजित एक साहित्यिक प्रतियोगिता में कवि गङ्गाधर को पराजित कर दिया। काशी में रहते हुए उन्होंने अयोध्या की भी तीर्थयात्रा की और यहाँ से लौट कर लक्ष्मीकर्ण की सभा में उन्होंने रामस्तुति काव्य की रचना अनेक श्लोकों में की। 'रामस्तुति काव्य' कल्पना पर आधारित कृति है। इसी में धारा नगरी के शासक भोजराज को अपना समकालीन बतलाया गया है। ब्यूलर का मत है कि काशी निवास की अवधि में ही कवि दक्षिण-पश्चिम के प्रदेशों में भी गया होगा और वहाँ से लौटकर पुनः उत्तर दिशा की ओर भ्रमण के लिए चला गया होगा।

काशी में कुछ दिनों तक निवास करने के पश्चात् बिल्हण राजा भोज की राजधानी धारा नगरी गए। भोज के विषय में ब्यूलर का विचार है कि सन् १०५५ ई० के पूर्व ही उनका देहान्त हो चुका था। इससे उन्हें भोज का दर्शन न हो सका। बिल्हण ने भोज को अपना समकालीन बतलाया है इससे विदित होता है कि भोज सन् १०६० ई० के बाद भी जीवित थे। कल्हण ने भी भोज को अपना समकालीन (१ २वीं सदी ईस्वी) बतलाया है। इस प्रकार बिल्हण और कल्हण के भोज विषयक अन्तःसाक्ष्यों से भारतीय इतिहास पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

धारा नगरी से बिल्हण गुर्जर देश गए। वह गुजरात के मुख्य नगर अणहिल्लपुर पाटन गए और वहाँ के अधिपति चालुक्य नरेश कर्ण त्रिभुवन मल्ल (सन् १०६४-१०६४ ई० तक) के दरबार में सन् १०७० ई० के आस पास आए और यहीं पर रहकर उन्होंने कर्णसुन्दरी नाटिका का प्रणयन किया। इस नाटिका के नायक स्वयं भीम देव के पुत्र कर्ण ही हैं जो प्रख्यात चालुक्य नरेश जय सिंह सिद्धराज के पूज्य पिता थे। ऐसा लगता है कि पाटन राज दरबार में उनका हार्दिक स्वागत नहीं हुआ। उन्होंने वहाँ के नरेश से अपने मतभेद की शिकायत भी की है। गुर्जरों के व्यवहार से असन्तुष्ट होकर उन्होंने पाटन राज्य का परित्याग कर दिया। सोमनाथ के मन्दिर में महादेव की पूजा अर्चना करके बिल्हण वहाँ से सेतु बन्ध रामेश्वरम् की तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। रामेश्वरम् से लौटते समय वह चालुक्य वंशीय राजाओं की राजधानी कल्याण नगरी जा पहुँचे। वहीं चालुक्य

वंश के भूषण कर्णाट देश के अधिपति कुन्तलेन्दु त्रैलोक्य मल्ल अपर नाम आहव मल्ल अथवा उनके पुत्र विक्रमादित्य षष्ठ (सन् १०६७ से ११२७ ई०) के दरबार में उपस्थित हुए। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर महाराज ने उनका बड़ा सम्मान किया और अनेक बहुमूल्य उपहार भेंट स्वरूप प्रदान कर उन्हें अपनी सभा का पण्डित भी नियुक्त कर दिया। कुछ समय के बाद उनकी योग्यता को परखकर उन्हें अपने राज्य का विद्यापति (शिक्षा-निदेशक) भी बना दिया। इससे उनका सम्मान बहुत बढ़ गया। छत्र लगाकर हाथी पर बैठ कर उन्होंने सम्पूर्ण कर्णाटक देश का भ्रमण किया और इस प्रकार वह अपने को अत्यन्त गौरवशाली एवं ऐश्वर्य सम्पन्न समझने लगे। कल्याण नगर में चालुक्य वंश के छठें विक्रमादित्य के संरक्षण में रहते हुए महाकवि बिल्हण ने उस राजा के गुण और गौरवादि का वर्णन करते हुए अठारह सर्गों में 'विक्रमाङ्कदेव चरितम्' नामक एक महाकाव्य की रचना की।

राजसभा के प्राचीन पण्डितगण नये महापण्डित के राज सभा में प्रवेश करने पर सशंकित होकर उनके विरोधी हो गए। समय समय पर राजपण्डितों का वैमनस्य प्रकट होने लगा। भला बिल्हण इस प्रकार का व्यवहार कब सहन करने वाले थे। कवि अत्यन्त व्युत्पन्न था। उनकी गर्वोक्तियों को प्रकट करने वाले कितने ही श्लोक देखने को मिलते हैं।

बिल्हण को अपने कवि वर्ग के गौरव एवं उनकी महिमा का बड़ा अभिमान था। आश्रय दाता राजाओं को लक्ष्य कर वह कहते हैं-

हे राजानस्त्यजत सुकविप्रेमबन्धे विरोधं
शुद्धा कीर्तिः स्फुरति भवतां नूनमेतत्प्रसादात्।
तुष्टैर्बद्धं तदलघु रघुस्वामिनः सच्चरित्रं
रुष्टैर्नीतस्त्रिभुवनजयी हास्यमार्गं दशास्यः।।

अर्थात् हे राजाओं! किसी सुकवि से विरोध करने की कल्पना भी मन में न लाओ, क्योंकि उसी की कृपा से संसार में तुम्हारी कीर्ति है। वाल्मीकि ने श्री रामचन्द्र जी से प्रसन्न होकर उन्हें अमर कीर्ति दी है और त्रैलोक्य विजयी रावण से रुष्ट होकर उसकी जगत् में हँसी उड़ाई है।

'विक्रमाङ्कदेव चरितम्' के अन्तिम श्लोकों को देखने से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि कवि अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए अत्यन्त जागरूक है। यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अन्तिम समय में वह विक्रमादित्य षष्ठ के कृपापात्र नहीं रह गए थे। राज्य द्वारा प्रदत्त सारी चल और अचल सम्पत्तियाँ जब्त कर ली गयीं और उन्हें तत्काल प्रभाव से राज्य की सीमा छोड़ देने की राजाज्ञा सुना दी गयी। कदाचित् यही कारण है कि विक्रमाङ्कदेव चरितम् में केवल चोल युद्ध तक की ही घटनाओं का वर्णन मिलता है। इसके बाद का इतिहास इस ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है। सन् १०८८ ई० में चोल युद्ध के सन्दर्भ में नर्मदा के पार जो आक्रमण किया गया था उस इतिहास का वर्णन बिल्हणरचित महाकाव्य में नहीं मिलता।

बिल्हण मिथक-

कुछ लोग अपने अहं और अन्तर्विरोधों के कारण अपने जीवन काल में ही मिथ बन जाते हैं। समष्टिमानस उनके इर्द गिर्द किंवदन्तियों का मकड़जाल बुनने लगता है। उनके बारे में लोक में तरह तरह की कथाएँ कही सुनी जाने लगती हैं। समाज में इस प्रकार उनका खूब प्रचार हो जाता है। बिल्हण के जीवन के बारे में भी कितनी ही मनगढ़न्त कहानियाँ प्रचलित हो गयी हैं। किसी अज्ञात नाम वाले कवि द्वारा रचित 'बिल्हणचरित' नामक खण्डकाव्य में इसी प्रकार की एक कथा मिलती है।

कहते हैं कि गुजरात के अनहिलपत्तन नामक नगर में वीर सिंह नामका एक राजा राज्य करता था। अवन्तिराज की पुत्री सुतरा उसकी पटरानी थी। उन दोनों की एक कन्या थी जिसका नाम शशिकला था। कन्या बड़ी रूपवती थी। माता पिता उसे देख देख कर निहाल हो उठते थे। इस प्रकार उनका जीवन सुख पूर्वक बीत रहा था।

शशिकला जब यौवन की ओर अग्रसर होने लगी, तब जैसा कि स्वाभाविक ही है पिता को उसकी समुचित शिक्षा की चिन्ता सताने लगी। किसी उपयुक्त शिक्षक की खोज में वह आकुल रहने लगे। फिर जैसा कभी-कभी हो जाया करता है आकुलता के इन्हीं क्षणों में संयोगवश कश्मीरी कवि बिल्हण घूमते फिरते

राजद्वार पर जा पहुँचे। उनके व्यक्तित्व और वाक्चातुर्य से अभिभूत हुआ राजपुरोहित अत्यन्त कौतुक से उन्हें राजा के पास ले गया। कश्मीरी गौर वर्ण, सुन्दर आकर्षक रूप, यौवन की उमङ्ग से तरङ्गित वाणी का स्फुरण, राजा वीर सिंह नवागन्तुक के निरुपम विद्याचमत्कार से प्रभावित हुए बिना न रह सके। कवि के मधुर कण्ठ से निःसृत छन्दों के रस में भींग भींग कर वह आनन्द में निमग्न हो उठे। राजा ने प्रसन्नता पूर्वक उन्हें धन-धान्य से पुरस्कृत कर अपनी पुत्री को पढ़ाने के लिए शिक्षक के पद पर नियुक्त कर दिया। शशिकला भी पिता की आज्ञानुसार बाल्यावस्थोचित तोता-मैना आदि की क्रीड़ा से विरत होकर अपने गुरु की सुश्रूषा तथा उनकी शिक्षा के अनुसार विद्या का अभ्यास करने लगी। इस प्रकार थोड़े दिनों में ही उसे संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का अच्छा ज्ञान हो गया।

एक बार की बात है। पुष्प मालाओं से सुसज्जित एवं उड़ती हुई मादक सुगन्ध से मन भावन वातावरण वाले राजमहल में कवि राजकुमारी को कामशास्त्र पढ़ा रहा था। शशिकला में यौवन, हावभाव के रूप में रह रहकर प्रकट होने लगा। शिक्षककवि भी रूप-यौवन सम्पन्न ही था। विद्या विनय आदि गुणों की भी उसमें कमी न थी। ऐसे मादक वातावरण समन्वित एकान्त के किन्हीं क्षणों में आँखें चार हुईं। दोनों परस्पर आकर्षित होकर एक दूसरे के निकट चले आए। विवेक का नियंत्रण ढीला पड़ा कि मर्यादा टूट गयी। भाग्य से प्रेरित एवं काम से मोहित कवि ने शशिकला को पूर्वजन्म की पत्नी समझकर उसके साथ गुप्त रूप से गान्धर्व विवाह कर लिया। अब क्या था प्रतिदिन कामशास्त्र में प्रतिपादित अनेक प्रकार की क्रीड़ाओं तथा विविध आसनबन्धों से कवि राजकुमारी को अनुरंजित करने लगा। इस प्रकार सुखानुभव करते हुए दोनों का समय बीतने लगा।

ऐसी बातें बहुत दिनों तक कहाँ छिप पाती हैं? रक्षा में नियुक्त पुरुषों ने राजपुत्री के तपे हुए कुन्दन के समान चमकते हुए अंगों को शिरीषपुष्पों की तरह मुरझाया हुआ देखकर तथा शरीर पर संभोग के चिह्नों को स्पष्ट रूप से अंकित लक्षित कर राजा को इसकी सूचना दे दी। राजा पर तो जैसे गाज गिर पड़ी। इस अनभ्र वज्रपात से राजा बौखला उठा। उसने बिल्हण को सूली पर चढ़ा देने का आदेश निकाल दिया।

वधिकगण अपराधी बिल्हण कवि को लेकर वध स्थल जा पहुँचे और बोले- हे वध करने योग्य! तुम्हारी मृत्यु आसन्न है। अपने आराध्य देवता का स्मरण करना चाहो तो कर लो। बिल्हण को मृत्यु का भय छू भी नहीं पाया था। मतवाला बावला मन अब भी राजकुमारी में आसक्त था। वही चम्पई वर्ण, वही रूप लावण्य, वही मादक चितवन। वही उत्तेजक हावभाव। स्वर्ण चम्पा की माला के समान गौर वर्ण वाली वरवर्णिनी शशिकला उसके अन्तर्नयनों के समक्ष उगने सी लगी। कवि स्वरचित- 'चौरसुरतपञ्चाशिका' के श्लोकों का पाठ करने लगा-

"अद्यापि तां प्रणयिनीं मृगशावकाक्षीं
पीयूषपूर्णकुचकुम्भयुगं वहन्तीम्।
पश्याम्यहं यदि पुनर्दिवसावसाने
स्वर्गापवर्गनरराज्य सुखं त्यजामि।।

इधर प्राणों के समान अपनी प्रिय पुत्री के बिल्हण के प्रति प्रगाढ़ अनुराग की बात राजमहिषी से सुनकर राजा का क्रोध शान्त हुआ। बिल्हण के गुणों से प्रभावित पुरवासियों, परिजनों और मंत्रियों द्वारा उद्बोधित एवं ब्राह्मण-वध के पाप से भयभीत राजा ने इस घटना को परमेश्वर की इच्छा के रूप में स्वीकार कर कवि को सूली पर चढ़ाने से रोक दिया।

बिल्हण और शशिकला का विवाह सम्पन्न करा दिया गया। दहेज में कवि को अनेक गाँव, हाथी, घोड़े, सुवर्ण रथादि धनधान्य भेंट किये गये। इस प्रकार मृत्यु के मुख से निकल कर बिल्हण ने राजा का अनुग्रह प्राप्त कर लिया और शशिकला के साथ चिरकाल तक दाम्पत्य जीवन का सुख अनुभव किया।

बिल्हण की किसी रचना में इस घटना का उल्लेख नहीं मिलता। इतिहास की कसौटी पर भी यह कथा खरी नहीं उतरती। ईस्वी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बिल्हण कश्मीर छोड़कर देशाटन पर निकल पड़े थे। उस समय अनहिल पत्तन में चालुक्य वंश में उत्पन्न भीमदेव का पुत्र कर्णदेव शासन करता था। वीर सिंह वहाँ का राजा नहीं था। ए०के० फार्बस रचित रासमाला नामक गुजरात देशीय इतिहास ग्रन्थ में लिखा है कि चापोत्कट अथवा चावड़ा वंशोत्पन्न वीर सिंह की मृत्यु सन् ९२० ई० में हो चुकी थी। बिल्हण ने ग्यारहवीं सदी के

उत्तरार्द्ध में गुर्जर देश की यात्रा की थी। 'विक्रमाङ्कदेव चरितम्' अठारहवें अध्याय के ९७ वें श्लोक "कक्षावन्धं विदधति न ये ······· सोमनाथं विलोक्य" से ऐसा अवश्य प्रतीत होता है कि गुर्जर देश में बिल्हण को किसी क्लेश का अनुभव अवश्य हुआ था। यह पहले भी कहा जा चुका है कि कल्याण नगर मे कुन्तलाधीश से बहुत बड़ा ऐश्वर्य प्राप्त करके भी बिल्हण भारी विपत्ति में फँस गए थे। चौरीसुरत पञ्चाशिका (चौर पञ्चाशिका) के प्रारम्भिक दो श्लोकों- "सर्वस्वं गृहवर्ति ······ श्रियः" तथा अयि किमनिशं······ बिल्हणः" से यह बात स्पष्ट है।

बिल्हण का समय-

बिल्हण के जन्म और मृत्यु की तिथियाँ स्पष्ट कारणों से उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि अपने बारे में उन्होंने खूब लिखा है किन्तु कहीं पर भी किसी निश्चित तिथि का संकेत नहीं किया है। उनका समय तो ज्ञात है फिर भी इस सम्बन्ध में उनके समकालीनों एवं परबर्ती कवियों की रचनाओं में कुछ संकेत इधर-उधर बिखरे पड़े हैं। उनकी कृतियों में भी अन्तःसाक्ष्य उपलब्ध हैं।

कल्हण उस वर्ष का संकेत करते हैं जब देशाटन के लिए बिल्हण कश्मीर से निकल पड़े थे। राजा कलश देव जिसके शासन काल में कवि ने कश्मीर से प्रस्थान किया था राजा अनन्त के पुत्र थे जिन्होंने १०२९ ई० से १०६४ ई० तक कश्मीर पर शासन किया था। अपने शासन-काल के अन्तिम दिनों में उन्होंने अपने पुत्र का अभिषेक करा दिया था और अपने जीवन-काल में ही सन् १०६६ ई० में अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप दिया था। इसी समय को हम बिल्हण के कश्मीर से मध्य भारत की ओर प्रस्थान करने की तिथि के रूप में सुरक्षित मान लेते हैं। बिल्हण के तत्काल पूर्ववर्ती बहुज्ञ क्षेमेन्द्र भी उपरिकथित नृपति के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी बहुत विस्तार से प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार परोक्ष रूप से क्षेमेन्द्र बिल्हण की स्थिति के काल के सम्बन्ध में जानकारी को पुष्ट करने में हमारी सहायता करते हैं। बिल्हण के समय के बारे में दूसरा स्रोत कर्नाटक के परमर्दि (Paramarde) से प्राप्त होता है। कल्हण को भी इसी स्रोत से जानकारी उपलब्ध हुई थी। बिल्हण द्वारा प्रयुक्त 'विक्रम' शब्द की पहचान कर ली गयी है। यह प्रयोग कल्याण के चालुक्य राजा विक्रमादित्य षष्ठ के लिए किया गया है

जिन्होंने सन् १०७६ ई० से ११२७ ई० तक शासन किया था। इससे यह संभावित लगता है कि बिल्हण ११वीं शताब्दी के अन्तिम दो चतुर्थांशों के मध्य अवश्य ही रहे होंगे। कदाचित् १०८८ ई० में कवि का जीवन खण्डित हो गया क्योंकि विक्रमाङ्कदेवचरितम् में अपने संरक्षक द्वारा किए गए दक्षिण के सबसे बड़े अभियान का उल्लेख वह नहीं कर सका। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि कश्मीर के बाहर कवि के जीवन का विस्तार उस समय से माना जा सकता है जब राजा कलश देव ने १०६६ ई० में कश्मीर की गद्दी सम्हाली थी। उस समय से शुरू होकर उनके कर्नाटक के संरक्षक द्वारा सन् १०८८ ई० में दक्षिण के सैन्य अभियान के बीच माना जा सकता है। फिर भी इस दावे को अन्तिम रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। उसके निम्नाङ्कित कारण हैं।

१- यह भी संभव हैं कि कलश देव के सिंहासनारूढ़ होने के पहले वर्ष ही बिल्हण ने कश्मीर से प्रस्थान किया हो क्योंकि कल्हण केवल इतना ही कहते हैं कि उन्होंने (बिल्हण ने) राजा कलश देव के शासन काल में ही कश्मीर छोड़ दिया था।

२- यह भी हो सकता है कि बिल्हण अपने कर्नाटक के संरक्षक की निगाह से गिर गए हों और कवि के प्रति शासक का अनुग्रह समाप्त हो गया हो। फलतः कवि ने अपने संरक्षक और उनके पराक्रम का गुणगान बहुत बढ़ा चढ़ा कर न किया हो।

बिल्हण का युग-

बिल्हण की रचनाओं में तत्कालीन सभ्यता और संस्कृति के शब्द-चित्र स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। महाकाव्य में जीवन अपने विराट् रूप में चित्रित होता है इसलिए 'विक्रमाङ्कदेव चरितम्' में तत्कालीन जीवन के विभिन्न रूपों के राशि राशि चित्र दिखलाई पड़ते है।

शासन-तन्त्र-

वह राजतंत्र का युग था। देश विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विभक्त था जिसके अलग अलग राज्यों में भिन्न-भिन्न राजा शासन करते थे। राजा में दैवीशक्ति की कल्पना कर ली गयी थी। प्रजा में राजा का बड़ा सम्मान था। वह साम दाम दण्ड भेदादि उपायों से शासन की व्यवस्था करता था। भयभीत लोगों की रक्षा करता

था। कोई उसकी आज्ञा का उलंघन नहीं कर सकता था। दिग्विजय में उसकी अभिरुचि होती थी। प्रजा की सभी विपत्तियों से रक्षा करना उसका परमकर्त्तव्य था। अपनी राज्य-सीमा का विस्तार वह अपनी विजयों द्वारा ही किया करता था।

राज्य-कोष-

शासन-व्यवस्था के अनेक अङ्ग होते हैं जिसमें कोष का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। राजा की आय के अनेक स्रोत होते थे। युद्ध में जो राजा पराजित हो जाता था उसकी भूमि, धन, कोष तथा सभी चल-अचल सम्पत्तियाँ विजयी राजा के कोष की वृद्धि करती थीं। पराक्रमी राजा के भय से बिना युद्ध किए ही जो राजा भाग जाता था उसका राज्य भी विजयी राजा अपने राज्य में मिला लेता था। युद्ध-स्थल में राजा की मृत्यु हो जाने पर उसके उत्तराधिकारी के अमाव में मृत राजा की सारी सम्पत्ति आक्रमणकारी राजा अपने अधिकार में कर लेता था। प्रजा पर अनेक प्रकार के कर भी लगाए जाते थे। अनेक अपराधों में अर्थ-दण्ड की व्यवस्था थी। इन स्रोतों से एकत्र आय से राजा कई कई विवाह रचाया करते थे। विवाह में उन्हें खूब दहेज भी मिलता था जो राज्य-कोष का एक भाग बन जाता था।

सैन्यशक्ति-

युद्ध को राजा उत्सव के रूप में स्वीकार करता था। उसी में उसका मनोविनोद हो जाता था। अपने राज्य के विस्तार की प्रबल आकांक्षा के कारण अथवा अपनी प्रजा की रक्षा के लिए राजा को युद्ध करना पड़ता था। युद्ध पर जाते समय उसके माथे पर मङ्गलतिलक लगाया जाता था। पुरोहित उसकी जीत की मङ्गलकामना करता था। युद्ध, सेना के द्वारा लड़ा जाता है। उदाहरण के लिए विक्रमादित्य षष्ठ के यहाँ दो प्रकार की सेना थी- थल सेना और जल सेना। स्थल सेना पाँच अङ्गों में विभाजित थी, अश्वारोही, गजारोही, ऊँटसवार, रथ तथा पदाति। युद्धस्थल में सैनिकों को रहने के लिए संग्राम-मठ-शिविर तथा कपड़े से बने हुए चौकोर गृह बनाये जाते थे जिन्हें चतुष्क कहते थे। सैनिक शिर पर लोहे का कवच धारण करते थे जिसे शिरस्त्र कहते थे। युद्ध बड़ी कठोरता तथा भयङ्करता से लड़ा जाता था। अश्वारोही और गजारोही सैनिक तलवार और भाले

का प्रयोग करते थे। शत्रुओं को कुचल डालने के लिए उन पर हाथी दौड़ा दिए जाते थे। हाथियों को वश में करने के लिए अंकुश और घोड़ों को वश में करने के लिए कशा का प्रयोग किया जाता था। हाथियों को मोटी साँकलों में बाँधा जाता था। बाँधने के लिए स्तम्भ होते थे। जिन्हें आलान कहा जाता था। घोड़ों को रखने के लिए वाजिशालायें थीं जिन्हें मन्दुरा कहते थे। सैनिकों को युद्ध सम्बन्धी शिक्षा देने के लिए जिस भू-क्षेत्र का निर्माण किया जाता था उसे खुरली कहते थे। सभी सैनिकों का युद्ध सम्बन्धी प्रशिक्षण होता था। युद्ध में शरीर की रक्षा के लिए कवच के साथ ही साथ निषङ्ग भी धारण किया जाता था। उस समय युद्ध में सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र के प्रयोग किए जाते थे। धनुष-बाण, भाला-खड्ग, कृपाण, गँड़ासा, छुरी आदि के प्रयोग की बात तो सामान्य थी। बज्र, षषक, कङ्कपत्र नामक बाण छोड़े जाते थे। ऐसे बाणों के प्रयोग भी होते थे, जिनको फेंकने से अग्नि प्रकट हो जाती थी। युद्धस्थल में अवसर पड़ने पर हाथ के चपेटों से भी काम लिया जाता था। दोनों पक्षों के सैनिक परस्पर दुःसह तथा कठिन मुष्टि-प्रहार करते थे। शत्रु एक दूसरे को काबू में रखने के लिए एक दूसरे की आँखों में धूल भी झोंक दिया करते थे। रणक्षेत्र में आहत व्यक्ति पर कठिन प्रहार करने का निषेध था। दूसरी जलसेना होती थी। विक्रमादित्य षष्ठ ने समुद्रपार के अन्य देशों पर भी विजय प्राप्त की थी। युद्ध में काम आने वाली नावें थीं जिनकी सहायता से नदियों को पार किया जाता था।

राजा जब युद्ध जीत लेता था तब विजयोल्लास के अवसर पर तूर्य, शंख, नगाड़े तथा भेरियों के महत्त्वपूर्ण नाद होते थे। विजयी राजा पराजित राजा की विनम्रता देख कर कभी कभी उसे क्षमा भी कर देता था। युद्ध पर कूच करने के पूर्व यदि शत्रुराजा विनम्रता से कुछ निवेदन करता था तब चढ़ाई करने वाला राजा उसे स्वीकार कर लिया करता था। चोल राजा की विनम्रतापूर्ण प्रार्थना उनके दूत के मुँह से सुनकर विक्रमादित्य षष्ठ ने उनकी पुत्री से विवाह कर लेना स्वीकार कर लिया था। पराजित राजा के साथ वैसे तो विजयी राजा शिष्ट व्यवहार करता था किन्तु धृष्टता एवं उद्दण्डता करने वाले राजा का वध कर दिया जाता था अथवा उसे कारागार में निगृहीत कर दिया जाता था।

शासन-व्यवस्था-

सम्पूर्ण देश विभिन्न नगरों में विभक्त था। जिन्हें देश कहा जाता था। उन सब नगरों में एक एक राजा हुआ करते थे जो वहाँ के शासन तंत्र के प्रमुख व्यक्ति होते थे। वे सभी परस्पर स्वतंत्र राज्य हुआ करते थे। एक राजा का समाचार दूसरे राजा तक पहुँचाने के लिए दूतों की नियुक्ति की जाती थी। शासन तंत्र में राजा की स्थिति सर्वोपरि हुआ करती थी। राज्य-कार्य को सुचारू रूप से चलाने के लिए मंत्रियों की नियुक्ति की जाती थी जो शासन को सुचारू रूप से चलाने के लिए राजा की सहायता करते थे। अपने जीवनकाल में ही राजा अपने बड़े पुत्र को युवराज पद पर नियुक्त कर देता था। बड़े भाई के रहते छोटे भाई को युवराज नहीं बनाया जाता था। वृद्धावस्था में राजा शासन का सारा भार उसपर छोड़कर स्वयं निर्लिप्त भाव से रहता था। आवश्यकता पड़ने पर शासन का संचालन मंत्री आदि भी करते थे। पूर्वनियुक्त युवराज का राज्याभिषेक पिता की मृत्यु के पश्चात् ही होता था। राजा का प्रधान कर्त्तव्य प्रजापालन ही माना जाता था। जब तक वह प्रजा की रक्षा करता था तभी तक सिंहासन पर आरूढ़ रह सकता था। गुप्त समाचारों को बतलाने के लिए राजा के गुप्तचर हुआ करते थे। गुप्तचर नीति-निपुण होते थे। प्रतिक्षण बाहर का समाचार बतलाने के लिए द्वारपालों की नियुक्ति की जाती थी।

दण्ड-विधान-

दण्डव्यवस्था न्यायपूर्ण थी। किसी को भी व्यर्थ सताया नहीं जाता था। अपराधियों से अर्थदण्ड भी लिया जाता था।

सामाजिक जीवन-

उस समय के समाज पर दैवीप्रकोप नहीं था। मेघ समय पर पर्याप्त मात्रा में जल प्रदान करते थे। इससे जल के अभाव में दुर्भिक्ष नहीं पड़ता था। प्रजा अन्न एवं धनधान्य से तृप्त एवं सन्तुष्ट थी। समाज में कोई झूठ नहीं बोलता था। चोरी नहीं करता था। घरों में ताले नहीं लगाये जाते थे। लोग उत्सव तथा समारोह खूब मनाया करते थे। किसी की अकाल मृत्यु नहीं होती थी। लोग आपस में मिलजुल कर रहते थे। तत्कालीन समाज धनधान्य से समृद्ध था। इसलिए खानेपीने की

व्यवस्था अच्छी थी। अन्न रखने के लिए घरों में अन्नागार हुआ करते थे। खाद्य सामग्री रखने के लिए भाण्डागार बनाए जाते थे। उस समाज में भक्ष्य, चोष्य, लेह तथा पेय, भोजन के चारों प्रकारों का प्रयोग प्रचलित था। भोजन के साथ लोग दूध एवं फल का भी प्रयोग करते थे। फलों में ऋतु के अनुकूल केला, नारियल तथा आम के फल खाये जाते थे। क्षत्रियराजा मृगया खेलते थे इसलिए संभवतः कुछ मांसभक्षण भी अवश्य ही करते रहे होंगे। भोजन के बाद ताम्बूल, लौंग, सुपारी आदि का प्रयोग मुखशुद्धि के लिए किया जाता था। ताम्बूल रखने के लिए पानदान का प्रयोग करते थे। अनेक प्रकार की मदिराएँ प्रचलित थी। उसके लिए सुरा, सीधु, आसव, मधु आदि अनेक नाम प्रचलित थे। शायद ये विभिन्न प्रकार की मदिराओं के नाम हैं। मदिरा पीने के लिए पात्र विशेष का प्रयोग किया जाता था जिसे चषक कहते थे। एक स्थान पर मधुमक्खी का भी प्रसङ्ग प्राप्त है। इससे ऐसा लगता है कि शहद का भी प्रयोग होता रहा होगा। भोजन में शक्कर एवं मिश्री का भी प्रयोग होता था।

रहनसहन का स्तर-

अपनी आर्थिक हैसियत के हिसाब से लोगों का समाज में रहनसहन था। राजा का प्रासाद तो अत्यन्त भव्य हुआ करता था। राजा दरबार में सिंहासन पर आसीन होता था। वह मणिजटित पादपीठ का उपयोग करता था। राजा की सेवा के लिए प्रतिहारी तथा सेवक हुआ करते थे। वे उनका शृङ्गार करते थे। चँवर डुलाते थे। ग्रीष्म ऋतु में राजा के आतप निवारणार्थ छत्र लगाकर उनके पीछे-पीछे चलते थे। उसे आतपवारणछत्र कहते थे, जिसमें सोने के दण्ड लगे रहते थे। राजा विशेष रूप से हाथी, अश्व अथवा रथ का प्रयोग करता था। इस प्रकार उसका जीवन स्वतंत्र था। उस पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं था। रानियों के लिए अन्तःपुर या हर्म्य हुआ करते थे। उनकी सेवा में अनेक दासियाँ हुआ करती थीं। रानियाँ अपने बच्चों को पालने के लिए धाय रखा करती थीं जिन्हें धात्रेयिका (उपमाता) कहते थे। प्रजा का रहनसहन भी सुखमय एवं विलासपूर्ण हुआ करता था। सभी लोग सुन्दर घरों में निवास करते थे। साधारण व्यक्ति भी अपना जीवन सुचारू रूप से व्यतीत करता था। स्त्रियाँ पुरुषों से परदा नहीं करती थीं। उनका जीवन भी अच्छी तरह बीतता था। लोग अपना अधिकांश समय अपने घरों को

सुसज्जित करने में व्यतीत करते थे। उत्सवों के अवसर पर गृहों के द्वार पर मोतियों के झालर लटका दिए जाते थे। पुरुष सभ्य तथा परिश्रमी होते थे। समाज में वे एक दूसरे से मिलतेजुलते रहते थे तथा सबको प्रेम से गले लगाते थे। स्त्रियाँ अपना कार्य सुचारु रूप से सम्पादित करती थीं और अवकाश के क्षणों में परस्पर हासविलास किया करती थीं। सामान्य घरों में बैठने के लिए लकड़ी के पीढ़ों के प्रयोग होते थे जिन्हें विष्टर कहते थे। सब लोग ऋतु के अनुसार सभी वस्तुओं का सेवन करते थे। गर्मी के दिनों में जल में भिगोए गये पंखों के प्रयोग होते थे, जिन्हें जलार्द्रा कहते थे। समाज में अतिथियों का खूब सत्कार होता था। निम्नश्रेणी के लोगों में कुछ अंशों तक वेश्यावृत्ति प्रचलित थी। वशीकरण सम्बन्धी अभिचार हुआ करते थे। लोगों का शकुन-अपशकुन में विश्वास था। अपनी अपनी हैसियत के हिसाब से लोग वेशभूषा भी धारण करते थे। सूती तथा रेशमी दोनों तरह के वस्त्र पहने जाते थे। सुसज्जित वेशभूषा में सभी अभिरुचि रखते थे। स्त्रियाँ और पुरुष दोनों शरीर के ऊर्ध्व भाग में उत्तरीय वस्त्र धारण करते थे। नीचे के भागों में अधोवस्त्र धारण किया जाता था। स्त्रियाँ घाघरे की तरह का पहनावा पहनती थीं जो नाड़े के द्वारा कमर में बाँधा जाता था। चोली पहनी जाती थी। दुपट्टा धारण किया जाता था। पुरुष अपने कन्धे पर दुकूल धारण करते थे। ओढ़ने के लिए मृग के रोमों से बने हुए कम्बल का प्रयोग किया जाता था जिसे 'रङ्गबाणपट्टिका' कहा जाता था।

उस समय केशसज्जा का भी प्रचलन था। नारियाँ केशों को अच्छी तरह बनाती थीं, जिसे धम्मिल कहते थे। वे वेणी भी बाँधती थीं। पुरुष भी अपने केशों को सम्हाल कर रखते थे। अगरूधूम से अपने केशों को सुवासित करने की प्रथा थी। महिलाएँ माथे पर सिन्दूर कपूर तथा कुंकुम की बिन्दी लगाती थीं। उस समय कुमारी कन्यायें तथा विवाहिता दोनों प्रकार की स्त्रियाँ माथे पर चन्दन की बिन्दी लगाया करती थीं। सुन्दरता में चार चाँद लगाने के लिए मुख पर रंग-बिरंगे छापे छापती थीं। कुंकुम-कपूर और चन्दन को मिला कर अङ्गराग बनाया जाता था जो विलेपन के काम आता था। यह पुरुषों और स्त्रियों दोनों के काम आता था। पुरुष माथे पर चन्दन तथा कपूर का तिलक लगाते थे। स्त्रियाँ पैरों में आलक्तक लगाती थीं। समाज में सभी वर्गों के लोग स्त्री और पुरुष आभूषणों से प्रेम करते थे।

आभूषणों के निर्माण में सोना-चाँदी-हीरा-मोती आदि महार्घ धातुओं तथा रत्नों के प्रयोग किये जाते थे।

राजा सिर पर सोने का रत्न जटित मुकुट धारण करता था। स्त्रियाँ पैरों में नूपुर, कटि में मेखला, गले में रत्न जटित मुक्ताओं के हार, हाथों में कंगन-मणिबन्ध, तथा शिर पर झूमड़ चूड़ामणि आदि पहना करती थी। वे कानों में दन्तपत्र तथा अवतंस धारण करती थीं। सभी उँगलियों में अँगूठियाँ पहनी जाती थीं। पुरुष भी आभूषण धारण करते थे। विशेषरूप से कुण्डल, कंकण, केयूर तथा हार पहना करते थे। जिन स्त्रियों की हैसियत सोना-चाँदी धारण करने की नहीं होती थी वे तालपत्रों से बने हुए आभूषण पहन लिया करती थीं। पुरुष और स्त्रियाँ दोनों फूलों के हार और कंकण पहना करते थे। स्त्रियाँ वेणी में फूलों की मालायें धारण करती थीं।

पारिवारिक-जीवन-

परिवार समाज की इकाई होता है। तत्कालीन परिवार का मुखिया पिता होता था। उसी की आज्ञा का सब लोग पालन करते थे। पुत्र अपनी पिता की आज्ञा को नहीं टाल सकता था। स्त्रियाँ परिवार में सम्मान पूर्वक रहती थीं। पितृऋण से उऋण होने के लिए परिवार में पुत्र का जन्म लेना आवश्यक माना जाता था। पुत्र को जन्म देने में ही गृहस्थ जीवन की सार्थकता मानी जाती थी। परिवार में सभी एक दूसरे के प्रति अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का पालन करते थे। सभी लोग आपस में मिलजुल कर शान्तिपूर्वक जीवन बिताते थे।

समाज में वर्णव्यवस्था थी। परिवार में संस्कारों का बड़ा महत्त्व था। प्रत्येक संस्कार शास्त्रोक्त रीति से सम्पन्न किए जाते थे। गृहस्थाश्रम में पुत्र जन्मोत्सव सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण एवं पावन संस्कार माना जाता था। प्रारम्भ से ही पुत्र के विषय में गर्भाधान, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, चूड़ाकर्म, यज्ञोपवीत आदि सभी प्रकार के संस्कार प्रचलित थे। प्रत्येक संस्कार ज्योतिषियों द्वारा विचारित शुभमुहूर्त में सम्पन्न किए जाते थे। पुत्र के जातकर्म संस्कार के समय सूतिकागृह की देहली को अनेक प्रकार की ओषधियों से सुसज्जित किया जाता था।

पूजास्थान को गोबर से लीप कर, पानी से छिड़क कर पवित्र किया जाता था। पूजन में दुग्धादि का प्रयोग किया जाता था। पुत्र के ऊपर अक्षत् छोड़े जाते थे। समिधा आदि मँगवा कर हवन सम्पन्न कराया जाता था। चारण तथा गायक मंगलगान किया करते थे। शंखतूर्यादि द्वारा मंगल नाद भी कराया जाता था। इस अवसर पर पुत्र के कल्याण की कामना से दान भी दिया जाता था। उस पर न्योछावर करने के लिए सिक्के लुटाये जाते थे जिन्हें गायकगण लूटते थे। नटों का नाच भी कराया जाता था।

विवाह भी एक महत्त्वपूर्ण संस्कार माना जाता था। उस समय बहु विवाह की प्रथा थी। विक्रमाङ्कदेव षष्ठ की दो रानियाँ थीं। १- चोलराजपुत्री और २- करहाट के राजा की पुत्री चन्द्रलेखा। विवाह के लिए स्वयंवर की प्रथा थी। कभी-कभी पिता किसी के गुणों से प्रभावित होकर अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर देता था। चोलराज ने अपनी पुत्री का विवाह ऐसे ही किया था। स्वयंवर के समय एक बहुत बड़ी सभा होती थी जिसे रङ्गशाला कहते थे। उसके ऊपर वितान ताना जाता था जिसे मोतियों और मणियों से सुसज्जित किया जाता था। स्वयंवर में लगभग सभी देशों के राजाओं को निमंत्रित किया जाता था। उनको बिठाने के लिए पृथक् पृथक् सुसज्जित एवं देदीप्यमान सिंहासनों का प्रबन्ध किया जाता था। स्वयंवर के समय राजकुमारी के साथ एक दूती हुआ करती थी जिसे प्रतिहाररक्षी कहा जाता था। वह प्रतिहाररक्षी सभी राजाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी रखती थी। वह राजकुमारी को सभी राजाओं का परिचय देती चलती थी। वह सुकुमार कण्ठों वाली हुआ करती थी। स्वयंवर में जब राजकुमारी पति का वरण कर लेती थी तब कन्या, वर के गले में एक माला डाल देती थी। उस माला को 'स्वयंवर स्रज' कहते थे। उसके पश्चात् उसी राजा के साथ उसका विवाह संस्कार सम्पन्न करा दिया जाता था।

कन्या के विवाह में पिता तो पूर्ण रूप से व्यय करता ही था साथ ही साथ वर भी कन्या के पिता को अतुल धन सम्पत्ति प्रदान करता था। विक्रमादित्य षष्ठ और चोलराज की कन्या के विवाह के प्रंसग में ऐसी ही बात देखने को मिली थी। पिता अपनी इच्छानुसार अपनी पुत्री और जामाता को धन दे सकता था।

शिक्षा-

उस समय लोगों की रुचि पढ़ने-लिखने में थी। शस्त्र और शास्त्र दोनों सिखलाने के लिए अध्यापक होते थे।पढ़ने के लिए अध्ययन-शालायें थीं। द्विज गृह या गुरूकुलों में वेद-व्याकरण-तर्क-विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान बालकों को प्रदान किये जाते थे।

वेद-शास्त्र का ज्ञान ब्राह्मणों के साथ क्षत्रिय बालकों को भी दिया जाता था। स्त्रियाँ भी शिक्षा ग्रहण करती थीं। वे सभी विद्याओं का अध्ययन करती थीं। ब्राह्मण वेद का भली-भाँति अध्ययन करते थें। शास्त्रों पर तर्क करने के लिए आख्यानगृह भी होते थे। कपटपूर्ण विषय भी लिखे जाते थे किन्तु ऐसे व्यक्ति अपने कृत्यों द्वारा समाज को हानि नहीं पहुँचा पाते थे।

बालकों को धनुर्विद्या भी सिखायी जाती थी। विक्रमादित्य षष्ठ के दरबार में अनेक पंडित, विद्वान् एवं कवि थे। बिल्हण के अतिरिक्त याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा टीका के रचयिता विज्ञानेश्वर भी उन्हीं के आश्रित थे।

जीविका या वृत्ति-

चारों वर्णो की जीविका के विभिन्न साधन थे। ब्राह्मणों की जीविका के मुख्य तीन साधन थे। (१) पैतृक सम्पत्ति (२) दहेज में प्राप्त सम्पत्ति (३) स्वतंत्रता पूर्वक स्वेच्छा से दिया हुआ धन जिसे वे दूसरों से दान रूप में स्वीकार कर लिया करते थे। समाज में ब्राह्मण केवल पूजा तथा अध्ययन का काम करता था । दान दक्षिणा से प्राप्त धन उनकी जीविका का प्रमुख साधन था। ब्राह्मण पढ़ते और पढ़ाते थे। पढ़ाने के लिए अध्ययनशालायें थीं। गुरूकुल अथवा द्विजगृह में ब्राह्मण गुरू ब्राह्मण बटुकों को वेदों का भलीभाँति अध्ययन करवाते थे। व्याकरण एवं तर्कशास्त्र का उन्हें ज्ञान कराया जाता था। ब्राह्मण बालकोंके साथ क्षत्रिय बालकों को भी वेद शास्त्र का अध्ययन कराया जाता था। क्षत्रियों को धनुर्विद्या की शिक्षा दी जाती थी। शास्त्रों के प्रयोग करने के व्यावहारिक उपाय सिखाये जाते थे। स्त्रियों की शिक्षा का भी प्रबन्ध होता था। क्षत्रियों के ऊपर देश की रक्षा का भार हुआ करता था। युद्धों में प्राप्त हुई वस्तु, लूटमार से उपलब्ध सम्पत्ति से उनकी

जीविका चला करती थी। वैश्य खेती एवं व्यवसाय द्वारा धनोपार्जन करते थे।बिल्हण रचित महाकाव्य में कुछ ऐसे शब्द मिलते हैं जिनसे तत्कालीन व्यवसायों के बारे में बहुत जानकारी प्राप्त होती है। कषपट्टिका (कसौटी) टङ्किका, शाण आदि ऐसे ही शब्द हैं। उस समय सोने चाँदी के आर्कषक आभूषण कुशल कारीगरों द्वारा बनाये जाते थे। कमल के आकार के सिंहासन बनाये जाते थे। रत्न परीक्षकों को उनकी शुद्वता परखने का ज्ञान एवं अनुभव होता था। लोहे के अनेक प्रकार के अस्त्रशस्त्र बनाये जाते थे। इनको बनाने वाले शस्त्रनिर्माता कहलाते थे। लकड़ी के काम करने वाले कुशल कारीगर भी होते थे जो रथ और विमानों का निर्माण भी करते थे। लाख को गलाकर उनकी अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनायी जाती थीं। 'विक्रमाङ्क-देव -चरितम्' में 'पारसीक तैलाग्नि' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। हो सकता है कि उस समय फारस देश से मिट्टी का तेल मँगवाया जाता रहा हो।उस समय के व्यवसायी सोना, चाँदी, लोहा, आदि धातुओं का भलीभाँति प्रयोग करना जानते थे। लकड़ी की भाँति भाँति की उपयोगी चीजें बनायी जाती थीं।

जो लोग सेवा का कार्य करते थे उन्हें शूद्र कहा जाता था। ऐसे लोग राजा-रानी के दास-दासी के रूप में कार्य करते थे। उनसे जो भी धन या सामग्री मिला करती थी उसी से वे अपना जीवनयापन करते थे।

धार्मिक जीवन-

बिल्हण रचित महाकाव्य के अध्ययन से तत्कालीन धार्मिक जीवन का भी पता चलता है। उस समय के समाज में शिव की आराधना प्रमुख रूप से प्रचलित थी। धनी लोग स्फटिक, मणि निर्मित शिवलिंग की पूजा करते थे। राजा, शिव के मन्दिरों का निर्माण करवाते थे। विष्णु के भक्तों की वैसे कमी नही थी। विक्रमांक देव षष्ठ ने विष्णु का एक विशाल मन्दिर बनवाया था। सभी धार्मिक कृत्यों का सम्पादन पुरोहितों द्वारा सम्पन्न करवाया जाता था । वे शास्त्रानुकूल पद्धति से मन्त्रों का उच्चारण करके धार्मिक कृत्य सम्पन्न कराते थे। ब्राह्मण प्रतिदिन अग्निहोत्र किया करते थे। राजा समय समय पर यज्ञादि करवाता रहता था । यज्ञ के लिए याग, मख, अश्वमेध जैसे शब्दों के प्रयोग होते थे। यज्ञ में हवन के लिए वेदी बनायी जाती थी। उसके बीच में एक स्तम्भ की स्थापना की जाती

थी जिसे यूप कहते थे। वेदमंत्रों का सस्वर पाठ होता था। क्षत्रिय राजा भी धार्मिक ग्रन्थों के पाठ किया करते थे। ज्योतिष पर लोगों का विश्वास था। बुरे ग्रहों की शान्ति के उपाय किये जाते थे। लोगों का ऐसा विश्वास था कि संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसे भगवद्भक्ति से न प्राप्त की जा सकती हो। स्त्री-पुरुष सभी तप कर सकते थे और मनोवांछित फल प्राप्त हो जाने पर वे वन से घर लौट आया करते थे। युद्ध पर कूच करते समय अधिष्ठातृ देवों की पूजा की जाती थी। राजा अपने कुलदेवता का स्मरण करता था। सम्पूर्ण समाज में सदाचार की प्रतिष्ठा थी। प्रातः सायं दोनों समय सन्ध्या-वन्दन किया जाता था।

सांस्कृतिक जीवन-

तत्कालीन समाज का सांस्कृतिकस्तर भी भलीभाँति विकसित था। संगीत-वास्तुशिल्प, मूर्ति तथा साहित्य के क्षेत्रों में बहुमुखी उन्नति दिखलायी पड़ती थी। गायन-वादन और नृत्य तीनों की समष्टिगत संज्ञा ही संगीत है। राज-प्रासादों में बन्दीगण, गायक, वैतालिक, चारण और कुशीलवों की नियुक्ति की जाती थी। प्रातःकाल की वेला में वे मंगलगान किया करते थे। उस समय के संगीताचार्यो को प्रत्येक स्वर एवं रागरागिनियों का ज्ञान था। स्त्रियों को भी संगीत की शिक्षा दी जाती थी। वे भी शास्त्रीय स्वरों के अनुसार गाया करती थीं। झूला झूलते समय तथा विभिन्न उत्सवों एवं मांगलिक अवसरों पर मधुर स्वर एवं लय में गीत गाने की परम्परा थी। लोकभाषा में भी गीत गाये जाते थे। अनेक प्रकार के वाद्यों के भी प्रयोग किये जाते थे। सभी शुभ अवसरों पर बाजे बजाये जाते थे। भेरी, दुन्दुभी, मृदंग, शंख, तूर्य और नगाड़ों का नाद इतनी जोर से होता था कि दिशाएँ गूँज जाती थीं। इसी प्रकार का नाद उस समय भी होता था जब राजा युद्ध के लिए कूच करता था अथवा युद्ध में विजय प्राप्त करके अपनी राजधानी में लौटने लगता था। स्त्रियाँ विशेष रूप से वीणा बजाया करती थीं। पटह (नगाड़ा) नाम का एक विशेष वाद्य का भी प्रयोग किया जाता था।

राज-प्रासादों में नृत्य करने के लिए नर्तकियाँ हुआ करती थीं। वेश्याओं का भी नाच होता था । चित्रलेखा, उर्वशी और रंभा उस समय की प्रसिद्ध नर्तकियाँ थीं। साधारण स्त्रियों को भी नृत्य करने की शिक्षा दी जाती थी। नृत्य का प्रदर्शन

करने के लिए रंगमंडप हुआ करते थे। नृत्य विषयक अनेक प्रकार के हाव-भावों के उल्लेख प्राप्त हैं। पुष्पोञ्जलि फेंकते हुए गात्रार्पण के भाव प्रदर्शन करके नृत्य करने की शिक्षा दी जाती थी। ऐसे शिक्षकोंको सूत्रधार कहा जाता था। उत्सवों के समय महलों में नटों का नर्तन हुआ करता था।

चित्रकला-

उस समय के लोगों को चित्रकला में भी बड़ी रुचि थी। राजप्रासादों में चित्र-वेश्म या चित्रशालाएँ हुआ करती थीं जिनमें अच्छे-अच्छे चित्र बना कर टाँगे जाते थे। चित्र बनाने में कूँची और रंग का प्रयोग किया जाता था। अधिकतर भित्ति चित्र ही बनाये जाते थे। विशेष रूप से हाथी और घोड़ों के चित्र बनाये जाते थे।

मूर्तिकला-

मूर्तिकला के अनेक प्रंसग बिल्हणरचित महाकाव्य में उपलब्ध हैं। देवालयों में स्फटिक मणि से निर्मित शिवलिंगों की स्थापना की जाती थी। राजप्रासादों में मणियों की बनी हुई पुत्तलियाँ राजा के शयनागारों में सजा कर रखी जाती थीं। लाख की पुत्तलियाँ भी बनायी जाती थीं जिन्हें 'जातवी' कहते थे।

वास्तुशिल्प-

राजाओं के प्रासाद बड़े विशाल और भव्य हुआ करते थे। वास्तुशिल्प के अन्तर्गत पाँच प्रकार के भवनों के उल्लेख प्राप्त हैं। वे हैं- (i) गुफा (ii) दुर्ग (iii) प्रासाद (iv) गृह और (v) मन्दिर। इनका विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखा गया है कि १- **गुफा**- का निर्माण पहाड़ो में पत्थरों को काट कर किया जाता था जिनमें से निकलने के लिए द्वार बनाये जाते थे। यथावसर उन द्वारों को पत्थरों की बड़ी बड़ी शिलाओं द्वारा ढ़ँक दिया जाता था। २- **दुर्ग**- राजाओं द्वारा बनवाये जाते थे। युद्ध के समय दुर्गों में सेना रहती थी। दुर्ग बड़े विशाल और मजबूत बनाए जाते थे। इनके मार्ग अत्यन्त विषम होते थे। दुर्गो के चारों ओर बहुत बड़ी चौड़ी एवं गहरी खाई बनायी जाती थी जिसे परिखा कहा जाता था। दुर्ग में प्रवेश करने के लिए बड़े-बड़े द्वार हुआ करते थे जिन्हें तोरण कहा जाता था। इन पर बन्दनमालिका भी बाँधी जाती थी।

३ प्रासाद- राजाओं के लिए इनका निर्माण किया जाता था। इनकी संरचनाओं में स्फटिक मणि, रत्नों तथा सोने का प्रयोग किया जाता था। ये अत्यन्त ऊँचे तथा गगनचुम्बी हुआ करते थे। इनमें विशाल स्तम्भ एवं वेदी का निर्माण किया जाता था। इनके शिखर कँगूरे के आकार के बनाये जाते थे। स्त्रियों के निवास के लिए अन्तःपुर बनाया जाता था इसमें सूतिका गृह भी हुआ करता था। चढ़ने के लिए सोपान बनाए जाते थे। यथा स्थान देहली बनायी जाती थी। इनके बीच में बड़ा सा आँगन होता था और उसकी शोभा बढ़ाने के लिए उसमें रत्नादि भी जड़े जाते थे। प्रासादों के शिखरों पर विशेष प्रकार की ध्वजाएँ फहरायी जाती थीं। उनके पास ही घोड़ों के लिए घोड़सार (बाजिशालाएँ) बनवायी जाती थीं। **४- गृह**- सामान्य लोग अपने रहने के लिए गृह बनवाते थे। जो बहुत ऊँचे बनाये जाते थे, उनको वेश्म कहते थे। इनमें सोपान बने होते थे जिनके द्वारा ऊँचाई पर चढ़कर स्त्रियाँ बाहर का कौतुक देख सकती थीं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि ये कई कई मंजिलों के हुआ करते थे। इनमें द्वार भी बनाए जाते थे। एक स्थल पर तो ऐसा प्रसंग प्राप्त है जिससे विदित होता है कि उस समय ऐसे गृह भी बनाये जाते थे जो चारों ओर से बन्द हुआ करते थे। इन विशेष प्रकार के भवनों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के भवनों, शालाओं तथा मठों के निर्माण भी उस समय हुआ करते थे। नहाने के लिए स्नानागार, विश्राम के लिए विश्रामगृह, केलिगृह, लीलागृह आदि भी बनाये जाते थे। इनके अतिरिक्त जलाशय और वापी बजाए जाते थे। एक विशेष प्रकार का घर भी बनाया जाता था जिसे बलभी कहते थे। **५- मन्दिर**-देवालय बड़े ऊँचे बनाये जाते थे। कुम्भाकृति में निर्मित उनके शिखर सुवर्ण के बनाये जाते थे। शोभन के लिए उनमें मुक्ताओं के भी प्रयोग किये जाते थे। उनके शिखरों पर ध्वजाएँ लगायी जाती थीं। उस समय शिव और विष्णु दोनों देवताओं के मन्दिर बनते थे जिनमें उन देवताओं की प्रतिमाएँ स्थापित की जाती थीं। महलों और घरों में झरोखे बनाये जाते थे जिन्हें गवाक्ष कहते थे। खिड़कियाँ अलग से बनायी जाती थीं जिन्हें वातायन कहा जाता था। इन वातायनों में विशिष्ट प्रकार की पच्चीकारी होती थी।

काव्यकला-

उस समय के बहुत से राजा काव्यकला के पारखी तथा कवियों के आश्रयदाता हुआ करते थे। काव्य के दोनों रूपों दृश्य एवं श्रव्य का विकास हो रहा था। उस समय नाटकों के भी मंचन हुआ करते थे जिनमें अभिनेता अपने अभिनय कौशल का प्रदर्शन करते थे। अभिनय में नृत्य का भी खूब प्रयोग होता था। ताण्डव तथा लास्य दोनों प्रकार के नृत्यों का आयोजन होता था। अभिनय सम्बन्धी हाव-भाव से अभिनेता भलीभाँति परिचित हुआ करते थे। अभिनय के लिए नाट्यशालाएँ बनी होती थीं जिनमें यवनिका का भी प्रयोग होता था। यवनिका के लिए 'काण्डपट' शब्द का भी व्यवहार होता था। दरबार में अनेक कवि और विद्वान होते थे। समय समय पर काव्य-रचना की प्रतियोगिता होती थी। विद्वानों के शास्त्रार्थ हुआ करते थे। इन आयोजनों में विजय प्राप्त करने वाले को राजा पुरस्कार प्रदान करके सम्मानित किया करते थे। जन सामान्य विभिन्न मांगलिक अवसरों पर लोकगीतों का प्रयोग करता था। राजा कवियों और विद्वानों का आश्रयदाता होता था। विशिष्ट आयोजनों के अवसरों पर राज दरबारियों और सामन्तों के सामने नाटकों के अभिनय होते थे।

बिल्हण की कृतियाँ-

अभी तक बिल्हण के नाम से प्रचलित मुख्यरूप से तीन काव्य कृतियों का पता लगा है। वे है :

१ चौरपञ्चाशिका अथवा चौरसुरत पञ्चाशिका

२ विक्रमाङ्कदेव चरितम् और

३ कर्ण-सुन्दरी नाटिका।

मुक्तावली और कुछ लोगों की सूचना के आधार पर शिवस्तुति नामक ग्रन्थ भी उन्हीं ने लिखे हैं।

१ चौर पञ्चाशिका अथवा चौरी सुरत पञ्चाशिका-

सन् १८७५ ई० में जार्ज ब्यूलर को कश्मीर में इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई थी। इस ग्रन्थ के नाम के अर्थ को लेकर संस्कृत के अनेक विद्वानों

के बीच बड़ा मतभेद रहा है। कोई इसका अर्थ१- चोर रचित पचास पद्य, कोई २- चोर नामक कवि द्वारा रचित पचास पद्य और कोई ३- चौर्यरति पर लिखित पचास पद्य करता है। ग्रन्थ के अन्त में ''इति चौरी सुरत पञ्चाशिका पण्डित बिल्हण कृता समाप्ता''- यह वाक्य मिलता है। इसका अर्थ करते हुए किसी ने लिखा है कि वस्तुतः यह चोर कवि की रचना है जिसकी समाप्ति का कार्य मात्र बिल्हण ने सम्पन्न किया है। अनेक हस्तलिखित प्रतियों में इसे बिल्हण काव्य भी कहा गया है। ब्यूलर तथा कीथ दोनों पाश्चात्य विद्वान इसे बिल्हण की ही रचना मानते हैं।

बिल्हण की यह कृति संस्कृत काव्य रसिकों के बीच इतनी लोकप्रिय रही है कि इसका मूलपाठ निश्चित करना बड़ा कठिन मालूम पड़ता है। इसके अत्यधिक प्रचलन के कारण इस काव्यकृति के विभिन्न पाठों में बड़ा भेद दिखाई पड़ता है। कवि के कश्मीरी मूल का होने तथा दक्षिण भारत के कतिपय राजसभाओं के पण्डित पद पर कार्यरत रहने के कारण कश्मीरी तथा दक्षिणी पाठों के चौंतीस पद्यों को समानता के आधार पर प्रामाणिक माना जा सकता है। उत्तर भारत में प्रचलित तीसरे पाठ में केवल सात श्लोक ही उपरिकथित अन्य पाठों से मिलते जुलते हैं।

इस काव्य रचना में प्रणयानुभूतियों की मार्मिक अभिव्यंजना को देख कर टीकाकारों को इसके पीछे कवि की किसी प्रेमिका की प्रेरणा दिखाई पड़ती है। इसी रचना को लेकर कवि के सम्बन्ध में किंवदन्तियों के कितने ही जाल लोक में बुने जा चुके हैं जिनके सम्बन्ध में ''बिल्हण-मिथक'' उपशीर्षक के अर्न्तगत पहले ही बताया जा चुका है। 'चौरी सुरत पंचाशिका' के कश्मीरी पाठ के टीकाकारों का कथन है कि कवि की प्रेमिका वह राजकुमारी अनहिलपत्तन के राजा वीर सिंह की पुत्री चन्द्रलेखा थी किन्तु दक्षिणी पाठ के टीकाकारों के मत में वह पांचाल के मदनाभिराम की पुत्री यामिनी पूर्णतिलका थी। किन्तु किसी ठोस प्रमाण के अभाव में ब्यूलर और कीथ दोनों पाश्चात्य विद्वान् इस घटना को कपोल कल्पना मात्र मानते हैं। उन दोनों के मत में यह बिल्हण की वास्तविक रचना है। इस काव्यग्रन्थ में कुल मिलाकर श्लोकों की संख्या पचास है। इसका प्रत्येक श्लोक

'अद्यापि' शब्द से प्रारम्भ होता है। इसमें पूर्वानुभूत प्रणय के सुन्दर एवं आकर्षक शब्दचित्र अंकित किए गए हैं। विगत स्मृतियों के आधार पर प्रेम प्रसंगों एवं प्रणय चित्रों का इतना मार्मिक सजीव एवं प्रभावी वर्णन अन्यत्र कम ही दिखलायी पड़ता है। यह एक शृंगाररस प्रधान रचना है जिसमें सुखमय प्रेम के अनिर्वचनीय मनमोहक एवं सूक्ष्म भाव दृश्यों के मनभावन चित्र अंकित किये गए हैं। वर्णन करते करते कवि वेगशाली उद्दाम मनोभावों को नियंत्रित कर सकने में अपने को असमर्थ सा अनुभव करने लगता है। उसकी इस उतावली के कारण शृंगार कहीं कहीं मर्यादा का अतिक्रमण करने लगता है।

इस रचना की भाषा अत्यन्त सरल, लय एवं प्रवाह से परिपूर्ण है। कवि का वाग्वैदग्ध्य सराहनीय है। वैदर्भीरीति में लिखे जाने के कारण इसमें प्रसाद एवं माधुर्य गुणों का मणिकांचनयोग घटित हो गया है। शैली मधुर रोचक एवं सरस है। सम्पूर्ण काव्य में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग किया गया है।

२ विक्रमाङ्कदेवचरितम्-

यह महाकाव्य एक प्रकार से लुप्तप्राय था इसलिए अनेक शताब्दियों तक विद्वानों के दृष्टिपथ से ओझल रहने के कारण पठन-पाठन के क्षेत्र में भी इसका उपयोग शताब्दियों तक बाधित रहा। सबसे पहले सन् १८७८ ई० में डॉ० जार्जव्यूलर को इसकी एक अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित प्रति जैसलमेर में मिल गयी थी। उन्होंने सप्ताह भर में उसकी एक प्रति करवा डाली और उसी वर्ष अपनी एक भूमिका के साथ इस महाकाव्य का प्रकाशन भी करवा दिया। एक ही प्रतिलिपि प्राप्त होने के कारण इस महाकाव्य में बहुत सी अशुद्धियाँ रह गयी थीं जिनका परिमार्जन आवश्यक था। इसके अनन्तर रामकृष्ण भण्डारकर आदि विद्वानों ने चालुक्य वंश तथा 'विक्रमाङ्कदेवचरितम्' में उपलब्ध नयी सामाग्री पर प्रकाश तो डाला किन्तु काव्य का मूल पाठ अशुद्ध ही रह गया। इसके पश्चात् ज्ञानमण्डल यन्त्रालय काशी से महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा द्वारा सम्पादित महाकाव्य का दूसरा संस्करण प्रकाशित करवाया गया किन्तु इस संस्करण में पहले की अशुद्धियों के साथ ही साथ अनेक नयी नयी अशुद्धियाँ आ गयीं। तत्पश्चात् मुरारिलाल शास्त्री नागर ने बहुत प्रयास करके जैसलमेर की प्रति, पुणे के

भण्डारकर प्राच्य गवेषणा संस्थान की प्रति तथा अन्य स्थानों के ग्रन्थालयों में उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों को एकत्र करके शुद्ध पाठ निर्धारित किया जिसका प्रकाशन काशी के सरस्वतीभवन ने सम्पन्न किया। इस पर भी पाठ-भेद निर्णय करने में कुछ प्रमाद हो ही गया कुछ स्थलों को छोड़कर अन्य स्थल इस संस्करण में ठीक हैं। जैसलमेर वाले संस्करण में टिप्पणियों का संग्रह रहने पर भी नागर जी ने इसमें चरितचन्द्रिका नामक एक टिप्पणी भी अपनी ओर से नियोजित कर डाली।

बिल्हण ने विक्रमांकदेवचरितम् की रचना १०८५ ई० के लगभग की थी इसलिए इस ग्रन्थ का रचनाकाल ११ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मानना उचित ही प्रतीत होता है। अठारह सर्गो के इस ऐतिहासिक महाकाव्य के सत्रह सर्गो में दक्षिण भारत के चालुक्य वंशीय राजा विक्रमादित्य षष्ठ (सन्१०६७-११२७ई०) तथा उनके वंश का इतिहास काव्य के कलेवर में प्रस्तुत किया गया है। कल्याण के चालुक्य वंशीय राजाओं के जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं उनसे बिल्हण द्वारा वर्णित घटनाओं की पुष्टि होती है। दक्षिण भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का विशद परिचय बिल्हण की इस कृति में उपलब्ध है। चोलों और चालुक्यों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा दक्षिण के तत्कालीन राज्यों के विस्तार की सूचना भी इस ग्रन्थ में प्राप्त है। इस प्रकार ऐतिहासिक घटनाओं के विवरण सहित निर्देश के कारण यह ग्रन्थ चालुक्य वंशीय राजाओं के इतिहास को जानने का प्रामाणिक साहित्यिक स्रोत मान लिया गया है। अठारहवें सर्ग में कवि ने अपने सम्बन्ध में तथा अपनी जन्मभूमि के बारे में विस्तार से लिखा है। अपने देशाटन का जो वर्णन इसमें कवि ने किया है उससे उस समय की भारतीय सामाजिक स्थिति पर पर्याय प्रकाश पड़ता है। इस ग्रन्थ में वर्णित घटनाओं की तिथियाँ नहीं दी गयी हैं। यद्यपि इस कृति में कृतिकार ने ऐतिहासिक तथ्यों तथा विवरणों के वर्णन में अपनी रुचि प्रदर्शित की है किन्तु कहीं कहीं पर अपने चरितनायक का अतिरंजित चित्रण अवश्य किया है। कवि का मुख्य लक्ष्य काव्य के सौन्दर्य के चमत्कार की सृष्टि होने के कारण उसने अनेक स्थलों पर पौराणिक और अलौकिक प्रसंगों की अवतारणा करके इस काव्य कृति को मात्र इतिहास की एक पुस्तक बन कर रह जाने के खतरे से बचा लिया है। कवित्व की दृष्टि से यह रचना रमणीय है। बिल्हण मूलतः स्मृतिजीवी रोमांटिक कवि हैं। प्रेम उनकी कविताओं

का केन्द्रीय कथ्य है। उत्तर मध्य और दक्षिण भारत में निवास करते हुए भी अपनी जन्मभूमि को वह भूल नही पाते- ''आश्चर्यमयी कथाओं के आदि स्रोत उस प्रदेश का मैं बखान क्या करूँ जो भगवान शंकर के श्वसुर हिमालय के शिखर का लीलामय आभूषण है। उसका एक भाग जहाँ अपने स्वाभाविक सुन्दर रूप में कुंकुम की सृष्टि करता है वहाँ दूसरा भाग सरयू तट के रस भरे गन्नों के टुकड़ों-जैसे पीले अंगूर उत्पन्न करता है।''[१] निश्चित रूप से यह ठीक ही कहा गया है कि कवि ने काव्य प्रतिभा की सुकुमार शलाका से इतिहास की कठोर शिला को भेद डालने का कठिन प्रयास किया है।[२] वैसे तो इस कृति में वीर रस की प्रधानता है किन्तु अनेक स्थलों पर शृंगार एवं करुण रसों की सफल अभिव्यक्ति हुई है। इस महाकाव्य की भाषा सरल और स्पष्ट है। लम्वे लम्वे समासों से बचे रहने का प्रयास किया गया है। वैदर्भी रीति में निवद्ध इस काव्य में प्रसाद एवं माधुर्य गुणों का सन्निवेश हुआ है। शव्दालंकारों का उचित मात्रा में प्रयोग किया गया है किन्तु मन्दाक्रान्ता कवि का विशेष प्रिय छन्द प्रतीत होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अनुरूप दृष्टान्त, सरस पद-विन्यास, एवं विशद भावप्रकाशन विल्हण की कविताओं की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

३- कर्णसुन्दरी नाटिका-गुजरात के मुख्य नगर अणहिल्लपुर पाटन में चालुक्य नरेश कर्ण त्रिभुवन मल्ल (१०६४-१०६४ ई०) के दरबार में सन् १०७० ई० के आसपास विल्हण आये थे। विद्वानों की धारणा है कि इसकी रचना कवि ने इन्हीं के आश्रय में रहते हुए सन् १०८०-१०६० ई० के बीच कभी की थी। साँतू मेहता के नाम से लोकप्रिय, राजा के महामात्य सम्पतकर, जैन धर्मावलम्वी थे। उन्हीं की प्रेरणा से प्रथम तीर्थंकर; ऋषभ देव का यात्रामहोत्सव धूमधाम से प्रति वर्ष मनाया जाता था। उसी अवसर पर इस नाटिका का प्रथम प्रयोग अन्हिलवाड़ के शान्तिनाथ मन्दिर के प्रांगण में प्रतिष्ठित दर्शकों के समक्ष हुआ था। इससे ज्ञात होता है कि मध्ययुग में साहित्य के संवर्धन में किसी प्रकार का धार्मिक पक्षपात नहीं हुआ करता था। इस प्रकार की घटनाओं को तत्कालीन भारतीय समाज की सांस्कृतिक एकता का एक ज्वलन्त उदाहरण माना जा सकता है।

१- वि०च० १८ब्रूमस्तस्य प्रथम वसतेरद्भुतानां कथानां, किं श्रीकण्ठश्वसुर शिखरिक्रोडलीलाललाम्नः एकोभागः प्रकृतिसुभगं कुकुमं यस्य सूते द्राक्षामन्यः सरस सरयू पुण्ड्रकच्छेद पाण्डुम्।।

२- न मोक्तिक श्छिद्रकरी शलाका प्रगल्भते कर्मणि टंकिकायाः।१।१६

सम्भवतः कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् और श्री हर्ष की रत्नावली से प्रेरणा लेकर कवि इसकी रचना में प्रवृत्त हुआ हो। इसका कथानक राजशेखर रचित 'विद्धशालभंजिका' के कथानक से बहुत कुछ मिलता जुलता है। इस नाटिका के नायक भीमदेव के पुत्र कर्णदेव त्रैलोक्य मल्ल स्वयं हैं जो इतिहास प्रसिद्ध चालुक्य नरेश जय सिंह सिद्धराज के पूज्य पिता थे। इसकी नायिका कर्णाटक के राजा जयकेशी की पुत्री 'कर्णसुन्दरी' है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि यह विद्याधर राजपुत्री दक्षिण कदम्ब वंश की राजकुमारी मयणल्ला से भिन्न नहीं है जिसका वर्णन हेमचन्द ने अपने द्वयाश्रम महाकाव्य में लगभग चौरासी श्लोकों में किया है। वृद्धावस्था में राजा कर्णदेव का कर्णसुन्दरी से रोमान्स हो जाता है जो अनेक विघ्नबाधाओं को झेलता हुआ आगे बढ़ता है और अन्त में राजा की प्रधान महिषी की सहमति से विवाह के रूप में परिणत हो जाता है।

चार अंकों में विभाजित इस नाटिका में श्लोकों की प्रधानता है। इसमें पात्रों के सम्वाद गद्य की अपेक्षा पद्य में अधिक हैं। उदाहरण के लिए प्रथम अंक में ५५ द्वित[illegible]य में ४२ तृतीय में ३२ और चतुर्थ में २४ श्लोक हैं। इस प्रकार उत्तरोत्तर अंकों में श्लोकों की संख्या कम होती गयी है। सबसे अधिक श्लोक प्रथम अंक में और सबसे कम श्लोक चतुर्थ अंक में हैं। सम्पूर्ण श्लोकों की कुल संख्या १५३ है। कथानक में इतिहास और कल्पना का मञ्जुल समन्वय दिखलायी पड़ता है। गद्यांश सरल एवम् संक्षिप्त होने के साथ ही साथ मात्रा में अल्प हैं। प्राकृत के छोटे बड़े गद्यांशों के प्रयोग अत्यन्त कुशलता से किए गए हैं। उनकी यह कृति कालिदास की रचनाओं से अत्यन्त प्रभावित लगती है। अनेक स्थलों पर तो उनका अनुकरण सा ही लगता है। कालिदास की ही तरह उन्होंने वैदर्भी रीति को अपनी रचनाओं में नियोजित किया है। अलंकारों का प्रयोग कुशलता से किया गया है। उनकी उपमाएँ बड़ी संगत एवं सटीक होती हैं। कर्णसुन्दरी नाटिका में अनेक छन्दों के प्रयोग मिलते हैं।

कर्णसुन्दरी नाटिका, सर्वप्रथम सन् १८८६ ई० में काव्यमाला ७ सिरीज के अन्तर्गत निर्णय सागर प्रेस मुम्बई से प्रकाशित हुई थी। इसका तीसरा संस्करण सन् १९३२ ई० में पाण्डुरंग जावजी ने वहीं से मुद्रित कर प्रकाशित किया था। इस संस्करण का संशोधन और सम्पादन जयपुर महाराज के आश्रित पं० दुर्गा

प्रसाद ने श्री काशीनाथ पाण्डुरंग परब के साथ मिल कर किया था। उन्हें सन् १६३१ में कर्णसुन्दरी नाटिका की दो पुस्तकें प्राप्त हुई थीं। उनमें से एक उनके मित्र राजगुरु पं० नारायण भट्ट पर्वणीकर ने ग्वाहेर नगर निवासी पं० गंगाधर जोशी से लेकर उन्हें उपलब्ध करा दी थी। दुर्गाप्रसाद जी को वह पुस्तक तीन सौ वर्ष पुरानी लगी थी। उनकी धारणा के अनुसार यद्यपि वह पुस्तक प्राय : शुद्ध थी किन्तु किसी संशोधक ने किन्हीं किन्ही स्थलों पर उसे शुद्ध कर दिया था। उसमें कुल पचास पृष्ठ थे। प्रत्येक पृष्ठ में छः पक्तियाँ थीं और प्रति पंक्ति में छब्बीस अक्षर थे। पृष्ठों की लम्बाई साढ़े तेरह अंगुल और चौड़ाई छः अंगुल थी। पचासवें पृष्ठ के अन्तिम भाग की समाप्ति पर 'समाप्ता चेयंकर्णसुन्दरी' लिखित था। इससे ऐसा लगता है कि इसका एक पृष्ठ और रहा होगा जिस पर कदाचित पुस्तक का लेखनकाल भी अंकित रहा हो।

दूसरी पुस्तक दुर्गा प्रसाद जी के एक अन्य मित्र पं० जेष्ठा राम मुकुन्द शर्मा ने मुम्बई के तत्कालीन कवि पं० गट्टू लाल शर्मा के पुस्तकालय से लेकर उन्हें दी थी। वह पुस्तक खण्डित थी। उसके तीन पृष्ठ लुप्त हो गए थे और उसमें अशुद्धियों की भरमार होने के साथ ही साथ ग्वाहेर वाली पुस्तक की प्रतिलिपि सी लगती थी, इसलिए पं० दुर्गाप्रसाद जी ने तीसरे संस्करण का सम्पादन ग्वाहेर वाली पुस्तक को ही आधार बना कर किया था।

कर्णसुन्दरी के सम्बन्ध में मद्रास विश्वविद्यालय के ''न्यू कैटोलोगस कैटालोगोरम्; खण्ड तीन १६६७ ई० के पृष्ठ १८५ पर मुद्रित सूचना इस प्रकार है- ''कर्ण सुन्दरी नाटिका में नहिलवाड़ के चालुक्य शासक कर्ण देव (१०६४-१०६४ ए० डी०) का विद्याधरी कर्णसुन्दरी के साथ रोमांस का वर्णन है। इसकी रचना चार अङ्कों में रत्नावली के आधार पर की गयी है। अन्हिलवाड़ के शान्ति नाथ मन्दिर में प्रयोग के उद्देश्य से कवि बिल्हण ने इसकी रचना की थी। khn-44-L-154-PUL II-P-281. PTD. KM-7. 1886। इसका प्रथम मराठी अनुवाद मुम्बई के बी- शास्त्री ने सन् १८६१ ई० में किया था।

इसका प्रथम तेलुगु अनुवाद १८४७ में कप्पजन थुला लक्ष्मण शास्त्री तथा माडिराजु विश्वनाथ राव ने वानपरति संस्थानम् आन्ध्रप्रदेश से किया था।

मुझे उन्नीस दिसम्बर सन् १९९२ ई० को गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद में शास्त्रचूडामणि आचार्य के रूप में कार्य आरम्भ करने का अवसर उपलब्ध हुआ था। यहीं पर रहकर बिल्हण रचित कर्णसुन्दरी नाटिका के सम्पादन और उसके हिन्दी अनुवाद का कार्य सम्पन्न किया गया। कदाचित् यह एक संयोग की ही बात है कि कर्णसुन्दरी नाटिका का हिन्दी में किया गया यही पहला अनुवाद है।

विद्यापीठ के संग्रहालय में कर्णसुन्दरी नाटिका की एक हस्तलिखित प्रति सुरक्षित है। हस्त निर्मित कागद पर काली स्याही से नागराक्षरों में लिखित यह आकार में साढ़े नव इंच लम्बी और सवा चार इंच चौड़ी है। लिखित अंश की लम्बाई ७ इंच ४ सूत और चौड़ाई २ इंच १ सूत है। कागद की कुल पृष्ठ संख्या ३४ है और उस पर दोनों ओर लिखा गया है। पूरी मातृका भ्रष्ट और खण्डित है। वास्तविक पृष्ठ संख्या ग्यारह के स्थान पर भूल से संख्या दस अङ्कित की गयी है। यह भूल लगातार सोलह पृष्ठों तक होती चली गयी है। यथा बारह के स्थान पर ग्यारह, तेरह के स्थान पर बारह, चौदह के स्थान पर तेरह, पन्द्रह के स्थान पर चौदह तथा सोलह के स्थान पर पृष्ठ पन्द्रह डाली गयी है। पृष्ठ संख्या सत्रह से भूल सुधार ली गयी है और फिर तो लगातार चौंतिस पृष्ठों तक सही पृष्ठ संख्या अंकित की गयी है। पृष्ठ संख्या एक से तीन तक प्रति पृष्ठ पंक्तियों की संख्या सात सात है। पृष्ठ संख्या चार के अगले पृष्ठ पर सात और पीछे के पृष्ठ पर पंक्तियों की संख्या आठ है। इसके अनन्तर पृष्ठ संख्या पाँच से चौंतीस तक प्रतिपृष्ठ पंक्तियाँ की संख्या नौ-नौ है। पृष्ठ संख्या एक से चौबीस तक प्रति पृष्ठ अक्षरों की न्यूनतम संख्या ग्यारह और अधिकतम संख्या उनतालिस है। प्रति पंक्ति में प्रयुक्त अक्षरों की न्यूनतम संख्या पृष्ठ चार पर दोनों ओर तीस तीस, पृष्ठ छः और सात पर उन्नीस-उन्नीस, पृष्ठ इक्कीस पर तीस तीस, पृष्ठ बाइस पर इकतिस, हैं। इसी प्रकार प्रति पंक्ति में प्रयुक्त अक्षरों की अधिकतम संख्या पृष्ठ तीन पर पैंतिस पैंतिस, पृष्ठ सात घर छत्तीस छत्तीस, पृष्ठ नौ पर सैंतीस सैंतीस, पृष्ठ सोलह पर सैंतीस सैंतीस, पृष्ठ अठारह पर अड़तिस अड़तिस, तथा पृष्ठ उन्तीस पर छत्तीस छत्तीस हैं। शेष पृष्ठों पर न्यूनतम और अधिकतम अक्षरों की संख्याएँ असमान हैं जिन्हें निम्नलिखित तालिका से अच्छी तरह समझा जा सकता है :-

१	२	३	४	५
वास्तविक पृष्ठ संख्या	अङ्कित पृष्ठ संख्या	प्रति पृष्ठ में अंकित पंक्ति संख्या	प्रति पंक्ति में प्रयुक्त अक्षरों की न्यूनतम संख्या	प्रति पंक्ति में प्रयुक्त अक्षरों की अधिकतम संख्या
१	१	७ + ७	२६ + ११	३४ + ३५
२	२	७ + ७	३१ + ३३	३६ + ३६
३	३	७ + ७	२८ + २६	३५ + ३५
४	४	७ + ८	३० + ३०	३५ + ३४
५	५	६ + ६	२८ + २६	३३ + ३२
६	६	६ + ६	२६ + २६	३६ + ३४
७	७	६ + ६	२६ + २६	३६ + ३६
८	८	६ + ६	२७ + २६	३४ + ३५
६	६	६ + ६	२६ + ३२	३७ + ३७
१०	१०	६ + ६	२६ + २७	३३ + ३१
११	१०	६ + ६	२६ + २८	३५ + ३३
१२	११	६ + ६	२६ + २६	३५ + ३३
१३	१२	६ + ६	२६ + २८	३६ + ३५
१४	१३	६ + ६	२७ + २५	३२ + ३६
१५	१४	६ + ६	३२ + ३०	३६ + ३७
१६	१५	६ + ६	३२ + ३०	३७ + ३७
१७	१७	६ + ६	२६ + ३०	३६ + ३७
१८	१८	६ + ६	३२ + २६	३८ + ३८
१६	१६	६ + ६	३२ + २८	३६ + ३३
२०	२०	६ + ६	३० + २८	३५ + ३२
२१	२१	६ + ६	३० + ३०	३८ + ३६

२२	२२	६ + ६	३१ + ३१	३७ + ३४
२३	२३	६ + ६	३२ + ३१	३५ + ३४
२४	२४	६ + ६	३१ + २६	३५ + ३४
२५	२५	६ + ६	३० + २७	३७ + ३३
२६	२६	६ + ६	३० + २८	३६ + ३३
२७	२७	६ + ६	३१ + २८	३६ + ३३
२८	२८	६ + ६	२६ + २८	३७ + ३४
२६	२६	६ + ६	३१ + २६	३६ + ३६
३०	३०	६ + ६	३२ + ३०	३८ + ३७
३१	३१	६ + ६	३३ + ३२	३७ + ३५
३२	३२	६ + ६	३२ + २६	३७ + ३६
३३	३३	६ + ६	३१ + २५	३७ + ३३
३४	३४	६	२६	३७

लिपिकार श्री गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, श्री कृष्णो जयति ॐ लिखकर कार्यारम्भ करता है। इसमें अङ्कों का विभाजन नहीं किया गया है। प्रथम अङ्क पृष्ठ संख्या एक से आरम्भ होकर वास्तविक पृष्ठ संख्या बारह, अंकित पृष्ठ संख्या ग्यारह के पहले पृष्ठ की साढ़े सातवीं पंक्ति पर समाप्त होता है। इसमें श्लोकों की संख्या क्रमानुसार अंकित की गयी है। दूसरा अंक वास्तविक पृष्ठ संख्या बारह, अंकित पृष्ठ संख्या ग्यारह की आठवीं पंक्ति के बीच से आरम्भ होकर पृष्ठ संख्या बाइस की दूसरी ओर की पाँचवीं पंक्ति के आरम्भ में समाप्त होता है। इसी प्रकार तीसरा अङ्क पृष्ठ बाइस की दूसरी ओर की पाँचवीं पंक्ति के बीच से प्रारम्भ होकर पृष्ठ संख्या अट्ठाइस की पहली ओर की सातवीं पंक्ति के आरम्भ पर समाप्त होता है और चौथा अङ्क पृष्ठ संख्या अट्ठाइस की पहली ओर की सातवीं पंक्ति के आरम्भ के बाद से शुरू होकर तैंतीसवें पृष्ठ की दूसरी ओर की सातवीं पंक्ति के लगभग अन्त में समाप्त होता है।

निर्णयसागर पाठ से मिलान करने पर पता चलता है कि गङ्गानाथ झा विद्यापीठ की हस्तलिखित पाण्डुलिपि में द्वितीय अङ्क में लिपिकार की भूल से आठवाँ और दसवाँ श्लोक छूट गया है। इसी प्रकार तीसरे अङ्क का इकतीसवाँ श्लोक भी छूट गया है। चौथे अङ्क के सभी श्लोक उपलब्ध हैं। निर्णय सागर पाठ के चौथे अङ्क में वीरसेन के संवाद के रूप में बीसवाँ श्लोक अङ्कित है जब कि गङ्गानाथ झा विद्यापीठ में वीरसेन का नाम ही छूट गया है। इसमें लिपिकार की भूल के कारण पाठ बड़ा ही भ्रष्ट और खण्डित है। प्रथम अङ्क के श्लोक संख्या एक से आरम्भ करके चौथे अङ्क के श्लोकों की कुल संख्या एक सौ पचास है। नाटिका की समाप्ति पर कवि बिल्हण की प्रशस्ति में रचित चार श्लोकों का संग्रह किया गया है। सबसे अन्त में लिखा है "समाप्ताचेयं कर्णसुन्दरी नाटिका रामायनमः श्री कृष्णो जयति, श्री रामः पातु, त्रिभुवन अब्दे सप्ताष्ठ षटम् परिगणित उमानाथ पुरि प्रकृष्टं मास्युर्जेचन्द्र बिम्बामल किरण घटा घट्टिते।" अर्थात् कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को काशी में यह ग्रन्थ पूर्ण हुआ। कब हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में 'त्रिभुवन' शब्द की उपस्थिति समस्या उत्पन्न कर रही है। 'अङ्कानां वामतो गतिः' के सिद्धान्त के अनुसार यदि त्रिभुवन से तीन का अर्थ निकालते हैं तब समय आयेगा ३७८६ ई० जो कि बिल्हण के समय से मेल नहीं खाता। बिल्हण का स्थिति काल इतिहासकारों की दृष्टि में ग्यारहवी शताब्दी के बीच तथा बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ का माना जाता है, इसलिए इस पाठ का समय सन् ३७८६ ई० मान्य नही हो सकता। लगता है लिपिकार की अवस्था अधिक होगयी थी इसलिए स्थान स्थान पर भूल कर जाना उसका स्वभाव ही बन गया था। यदि 'त्रि' को 'श्री' मान लिया जाय तो 'श्री भुवन' शब्द से एक संख्या ली जा सकती है। ऐसी स्थिति में संख्या बनेगी १७८६ ई० तब इस हस्तलिखित पाठ को अठारहवीं शताब्दी का आसानी से माना जा सकता है और इसकी संगति बिल्हण के समय के साथ आसानी से बैठ जायेगी। नागराक्षरों में प्रयुक्त बहुत से वर्णो और संख्याओं की आकृति भी उसी कालावधि की लगती है। गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ इलाहाबाद के विद्वान प्राचार्य डॉ० गयाचरण त्रिपाठी जी के प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना पावन कर्त्तव्य समझता हूँ जिनकी कृपा और सहयोग के बिना यह कार्य सम्पन्न कर लेना कठिन होता।

इस ग्रन्थ में पाठ सम्बन्धी अनेक समस्याओं पर उनके बहुमूल्य सुझाओं से मैं लाभान्वित हुआ हूँ।

डॉ० राम किशोर झा ने विद्यापीठ में सुरक्षित 'कर्णसुन्दरी नाटिका' की मातृका की लिपि को पढ़ने में सहायता की है अतः वह मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। विद्यापीठ के सभी विद्वान अध्यापकों और कर्मचारियों के सद्भाव और सहयोग के कारण ही मैं अपना कार्य सम्पन्न कर सका एतदर्थ सबके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ। संस्कृत साहित्य संस्थान नयी दिल्ली के स० निदेशक डॉ० प्रकाश पाण्डेय ने अनेक प्रकार से इस ग्रन्थ के सम्पादन एवं प्रकाशन में अपना अमूल्य सहयोग एवं सहायता दी है अतः वे मेरे साधुवाद के पात्र हैं।

शाकुन्तल मुद्रणालय इलाहाबाद के सुयोग्य एवं यशस्वी सत्वाधिकारी एवं प्रबन्धक आयुष्मान पं० उपेन्द्र त्रिपाठी ने अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए इस पुस्तक के सुरूचि पूर्ण मुद्रण में जो उत्साह दिखलाया है उसके लिए वह प्रशंसा, स्नेह और आशीर्वाद के वस्तुतः अधिकारी हैं।

इस नाटिका पर कार्य करते समय हमारी अग्रजा तनया श्रीमती विभा श्रीवास्तव ने हमारे घर पर रूक कर अपनी माता के गृहकार्यों में हाथ बँटाकर कर मुझे गृहस्थी के जंजाल से मुक्त कर रखा था। इस नाटिका के प्रकाशन के समय हमारी बेटी अब इस संसार में नहीं रही। दोनों परिवारों पर अनभ्र वज्रपात हुआ। 'हरि-इच्छा बलीयसी'। दिवंगता आत्मा की चिर शान्ति के लिए परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ। इस पुस्तक को प्रकाशित देखकर उसे प्रसन्नता होती अतः यह कृति उसी स्मृतिशेष को समर्पित है।

भूल जाना और गलती कर बैठना मानव स्वभाव की विशेषताएँ हैं। संभव है इस पुस्तक में भी कुछ भूलें, कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों। कृपालु पाठकों द्वारा इन त्रुटियों की ओर संकेत किये जाने पर भविष्य में उनका परिमार्जन कर दिया जायेगा। इति शम्।

अविनाशचन्द्र

603/501 कर्नलगंज
पन्नालाल रोड, इलाहाबाद-2

15-10-2003

महाकवि श्री विल्हणविरचिता
कर्णसुन्दरीनाटिका

प्रथमोऽङ्कः

अर्हन्नार्हसि मामुपेक्षितुमपि क्षामां त्वदर्थे तनुं
किं नालोकयसे भविष्यति कुतः स्त्रीघातिनस्ते सुखम्।

अङ्गैः काञ्चनकान्तिभिः कुरू परिष्वङ्गं सुपर्वाङ्गना-
लोकैरित्थमुदीरितः क्षितिधरस्थायी जिनः पातु वः।।१।।

हिन्दी-अनुवाद- *हे जिन स्वामी! मेरी उपेक्षा करना आपके लिए उचित नहीं है। आपके लिए क्षीण हुई मेरी देह को आप क्यों नहीं देखते? स्त्री की हत्या करने वाले आपको सुख कहाँ से मिलेगा? सोने की सी कान्तिवाले (अपने) अङ्गों से (मेरा) आलिङ्गन कीजिए। इस प्रकार देवस्त्रियों के द्वारा कहे गए जिनदेव आप लोगों की रक्षा करें।।१।।*

अपि च- और भी

सन्तापं शमयन्तु वस्त्रिविधमप्युद्धूलनानन्तरं
तिस्त्रस्ताः करतालिकाः पुररिपोर्निर्विघ्न संध्यार्चनाः।

दैव्याः शैलभुवः क्षणं मदयता दृष्टिं यदाकर्णना-
त्कौमारेण शिखण्डिना निबिडितक्रीडारवं नृत्यते।।२।।

हिन्दी-अनुवाद- *शिव के द्वारा (हथेलियों पर) कोई चूर्ण छिड़कने के पश्चात् बजायी गयी वे (सुप्रसिद्ध) तीन तालियाँ जो सन्ध्याकालीन अर्चना को निर्विघ्न करने वाली हैं और जिनके सुनते ही कार्तिकेय का मयूर पार्वती देवी की आँखों को क्षण भर उल्लास देते हुए सघन क्रीडा शब्द के साथ नाच करने लगता है, आप लोगों के तीनों प्रकार के तापों को शान्त करे।।२।।*

अपि च- और भी

वक्रेन्दोः सदृशी भविष्यति लिपिः कण्ठे नु कण्ठोचिता
लक्ष्मीः किं कुन्चमण्डले कुचभुवः संवादिमध्यं नु किम्।

इत्यादिक्रमशः कुतूहलरसप्रेमालसा दृष्टयः,
श्रीकान्तस्य जयन्ति दुग्धजलधेरभ्युल्लसत्यां श्रियि ।।३।।

(नान्द्यन्ते)
(नान्दी के अन्त में।)

हिन्दी-अनुवाद- *आलिङ्गन करने योग्य लक्ष्मी क्या गले लगने पर कुचमण्डल में वक्रचन्द्रमा जैसी लिखावट हो जायेगी? और क्या कुचमण्डल के अनुरूप (इसका) मध्य भाग हो जायेगा। इस प्रकार (सोचते हुए) लक्ष्मीरमण (विष्णु) की क्रमशः कौतुकरस और प्रेम से अलसायी हुई दृष्टियाँ क्षीरसागर की देदीप्यमान लक्ष्मी पर सर्वोत्कर्ष रूप से पड़ रही हैं।।३।।*

सूत्रधार :- *कथं प्रभात समयः? – क्या सबेरा हो गया ?*

अपरशिखरिचूडाचुम्बि बिम्बं हिमांशो-
रिह हि विरहिणीनां याति शापैरिवास्तम्।

अपि कुपित चकोरी नेत्र सब्रह्मचारी
भजति ककुभमैन्द्रीं कोऽपि सांध्यो विलासः।।४।।

हिन्दी-अनुवाद- *क्यों कि दूसरे पर्वत (अस्ताचल) की चोटी का चुम्बन करने वाला चन्द्रमण्डल मानों यहाँ वियोगिनी (नायिकाओं) के शापों से अस्त हो रहा है और क्रोध से भरी चकोरी की आँखों के समान अनिर्वचनीय प्रातःकालिक सौन्दर्य, पूर्व दिशा का सेवन कर रहा है।।४।।*

दधति गृहचकोराश्चन्द्रिकाम्भः शिलोञ्छं
क्कचन कनकशालाजालकाभ्यन्तरेषु।

अपि रतिभवनानि व्यञ्जयन्ति प्रियाणां
निधुवन सुखनिद्रां मूकपारावतानि।।५।।

हिन्दी-अनुवाद- *कहीं सोने के भवनों की खिड़कियों में घरेलू चकोर पक्षी चन्द्रकिरणों से झरने वाले जलकणों (ओस) को चुँगते हैं और (कहीं) चुप बैठे कबूतरों वाले रतिगृह, प्रेमी-प्रेमिकाओं के संभोग जन्य सुखनिद्रा को सूचित कर रहे हैं।।५।।*

बिडम्बयति दाडिमी कुसुममत्र सौत्रामणी
दरिद्रति वियद्द्रुमे मुकुलकान्तयस्तारकाः।

वपुस्तुहिन दीधितेरपि चकास्ति कस्तूरिका
कुरङ्गनयनारुणं वरुण लाञ्छितायां दिशि।।६।।

हिन्दी-अनुवाद- *इस समय पूर्वी दिशा अनार के फूल का उपहास कर रहा है (अर्थात् उस फूल से बढ़ कर लाल है।) कलियों की सी कान्ति वाले तारे आकाश रूपी वृक्ष में कम होते जा रहे हैं और चन्द्रमा का कस्तूरी मृग के नेत्र के समान लाल शरीर दीप्तिमान हो रहा हैं ।।६।।*

(नेपथ्याभिमुखम्) (नेपथ्य के सामने) आर्ये, अपि सुसंगतानि रङ्गमङ्गलानि ।

हिन्दी अनुवाद- *आर्ये, रङ्गमञ्च पर सब माङ्गलिक वस्तुएँ सुसज्जित हैं न ?*

विमृश्य- (सोचकर) पराङ्मुखीवार्या। किं नु कारणं स्यात्। (स्मृतिमभिनीय) आर्या उदासीन सी मालूम पड़ रही हैं। क्या कारण होगा ? (स्मरण करने का सा अभिनय करके।)

आस्थानावसरे नरेन्द्रतरणेः सा दाक्षिणात्या नटी
नृत्यन्ती यददर्शिनूतन वयो विद्यानवद्या मया।

तद्बोष्ठी रसनिर्भरेण किमपिस्वप्ने सदद्य स्थितं
मन्ये मन्यु कषायितेनं मनसा तेन स्थिता मे प्रिया।।७।।

हिन्दी-अनुवाद- महाराज श्रेष्ठ के समान भवन में जो मैंने नवीन अवस्था और विद्या से युक्त अनिंद्य (सुन्दरी) दाक्षिणात्य नर्तकी को देखा और उसके साथ बातचीत के रस से भर कर आज स्वप्न में कुछ कहा, उससे मैं समझता हूँ कि मेरी प्रिया क्रोध से लाल हुए मन वाली हो गयी है ।।७।।

(सप्रत्ययम्) 'विश्वास के साथ,' इतस्तावत्– इधर आओ।

(प्रविश्य)
(प्रवेश करके)

नटी- इअह्मि 'सं०छा० इयमस्मि हि० अनु० यह मैं हूँ'

सूत्रधार- अलमसंभाव्य संभावनया। हि० अनु० असम्भव (वस्तु) की संभावना करना व्यर्थ है।

परिणय विधि रासीदावयोः पांसुलीला
परिचय दृढरूढस्नेहयोर्बाल्य एव।

स्मरसि किमपि तत्राप्यानुकूल्यात्परं य
त्सपदि पुनरसौ मे पञ्चबाणः प्रमाणम्।।८।।

हिन्दी-अनुवाद- धूलिक्रीड़ा में उत्पन्न परिचय के कारण बद्धमूल स्नेहवाले हम दोनों की विवाहविधि बचपन में ही (पूरी) हो गयी थी। फिर इसमें भी अनुकूलता (परस्पर प्रेम) के बाद शीघ्र ही जो कुछ हुआ वह स्मरण करती हो? मेरा तो कामदेव ही निर्णायक है ।।८।।

नटी- न मे कावि आसङ्का। आणवीयदु किं अणुचिट्ठीयदु त्ति।

सं० छाया- न मे काप्याशङ्का। आज्ञापयतु किमनुष्ठीयतामिति।

नटी- मुझे कोई आशंका नहीं है। आज्ञा दें कि मुझे क्या करना है?

सूत्रधार- नन्वस्मिन्नणहिल्ल्पाटणक मुकुटमणौ श्री शान्त्युत्सव देवगृहे

भगवतो नाभेयस्य महामात्य-संपत्कर प्रवर्तिते यात्रामहोत्सवे समुत्सुकः सामन्तजनः प्रत्यग्र प्रयोगदर्शनाय।

सूत्रधार- इस अणहिल्ल पाटणक देव के मुकुटमणि स्वरूप श्री शान्ति उत्सव के देवालय में भगवान नामेय के महामंत्री संपटकर द्वारा चलाये हुए यात्रामहोत्सव में अभिनव प्रयोग देखने के लिए सामन्तगण अत्यन्त उत्सुक हैं।

(नेपथ्ये गीयते)
(नेपथ्य में गाना हो रहा है।)

णवमाहवीएँ दाविय सरसविलासाइँ परवसाइन्तो
मन्दीक अकुन्दल आचुम्बुण तण्हो भमइ भमरो।।६।।

सं० छाया- नवमाधव्या दृष्ट्वा सरसविलासान्पर वशायितः।
मन्दीकृत कुन्दलता चुम्बनतृष्णो भ्रमति भ्रमरः।।६।।

हिन्दी-अनुवाद- नयी चमेली के सरस विलासों (हावभावों) को देख कर परवश हुआ सा भ्रमर कुन्दलता के चुम्बन की तृष्णा को मन्द करके घूम रहा है।

सूत्रधार- (सहर्षम्) कथमुपक्षिप्तैव नटैर्नाटिका कर्णसुन्दरी। अहो सुकृतानि सामाजिकजनस्य।

हिन्दी-अनुवाद- (हर्षपूर्वक) क्या अभिनेताओं ने कर्णसुन्दरी नाटिका ही प्रारम्भ कर दी है। अहो! दर्शकों के बहुत पुण्य हैं।

हंहो भाग्यमहानिधिर्दयितया देवस्य दग्धुः पुरां
पात्रं पुत्र इव स्वयं विरचितः सारस्वतीनां गिराम्।

साहित्योपनिषन्निषण्ण हृदयः श्री बिल्हणोऽस्यां कविः
किं चैतत्किल भीमदेवतनयः साक्षात्कथानायकः ।।१०।।

हिन्दी-अनुवाद- महाभाग्यशाली, त्रिपुरान्तक महादेव की प्रियतमा (उमा) के द्वारा स्वयं पुत्र के समान बनाए हुए, सारस्वतवाणी के पात्र और

साहित्य एवं उपनिषद (के चिन्तन) में संलग्न मन वाले श्री बिल्हण इस नाटिका के रचयिता हैं और यह वार्ता है कि (महाराज) भीमदेव के पुत्र स्वयं (इसके) कथानायक हैं।।१०।।

स च कविरेव मुक्तवान्

हिन्दी-अनुवाद- *उस कवि ने इस प्रकार कहा-*

औचित्यावहमेतदत्र तु रसः काष्ठामनेनार्हति
व्युत्पत्तेरिदमास्पदं पदमिदं काव्यस्य जीवातवे।

एवं यः कवितुः श्रमः सहृदयस्तं पुस्तकेभ्यः पठ
न्सूक्तीरूत्पुलकः प्रमार्ष्टिनिबिडैरानन्द बाष्पोद्गमैः।।११।।

हिन्दी अनुवाद- *यहाँ यह कहना युक्तियुक्त है कि इस काव्य के द्वारा रस चरम सीमा पर पहुँच गया है। यह (नाटिका) व्युत्पत्ति का घर है। यह काव्य की जीवनीशक्ति का स्थान है। इस प्रकार कवि का जो श्रम इसमें लगा है उसे पुस्तकों से पढ़ता हुआ सहृदय व्यक्ति सघन आनन्द के आँसुओं से रोमाञ्चित होकर सूक्तियों का शुद्धिकरण करता है।।११।।*

अपि च- *और भी,*

न विश्वासस्थानं प्रियमभिदधानोऽपि पिशुनो
विषं प्राणान्हर्तुं धुरि मधुरमेव प्रभवति।

परं शक्तः कर्तुं किमु मम वराकः कतिपये
यदद्यापि ज्ञप्तौ सुकविवचसां केऽपि सुजनाः।।१२।।

हिन्दी-अनुवाद- *प्रिय बात बोलता हुआ भी दुष्ट व्यक्ति विश्वास का स्थान नहीं होता है। मीठा विष प्राणों को हरने के लिए आगे ही रहता है। कुछ क्षुद्रजन मेरा क्या कर सकते हैं? क्योंकि आज भी सुकवियों के वचनों को समझने वाले भद्रजन विद्यमान हैं।।१२।।*

(कर्णंदत्त्वा) किमात्थ। कोऽत्र कथासंबन्ध इति। श्रूयताम्।

हिन्दी-अनुवाद- *(कान लगा कर) क्या कहते हो? यहाँ यह कहने का क्या सम्बन्ध है? सुनो।*

विद्याधरेन्द्रतनयां नयनाभिरामां
लावण्य विभ्रम गुणां परिणीय देवः।

चालुक्यपार्थिव कुलार्णव पूर्णचन्द्रः
साम्राज्यमत्र भुवनत्रयगीतमेति।।१३।।

हिन्दी-अनुवाद- *चालुक्य राजाओं के वंश रूपी समुद्रमें पूर्णचन्द्र के समान महाराज ने नयनों को सुख देने वाली तथा सौन्दर्य की छटा रूपी गुण से युक्त विद्याधर राज की पुत्री से विवाह करके ऐसा साम्राज्य प्राप्त किया है जिसका तीनों लोकों में गुणगान हो रहा है। ।।१३।।*

(पुराऽवलोक्य) आगे देखकर। कथमयमस्मद्भ्राता महामात्यप्रणिधि भूमिकामाश्रित एवं तदेहि। अनन्तरकरणीयाय सज्जीभवावः।

हिन्दी-अनुवाद- *क्या हमारे भाई महामंत्री के गुप्तचर की भूमिका (पोशाक) में ही हैं? तो आओ। बाद के कर्त्तव्य के लिए हम दोनों तैयार हो जॉए।*

(इति निष्क्रान्तौ)
(यह कह कर दोनों चले जाते हैं।)
प्रस्तावना।
प्रस्तावना समाप्त।

(ततः प्रविशति प्रणिधिः)
(तदनन्तर गुप्तचर प्रवेश करता है।)

प्रणिधिः- **अहो किमपि यौगन्धरायण प्रभृति महामात्य विजयिनोऽभ्यर्हिता मतिरमात्य संपत्करस्य। तथा हि।**

गुप्तचर- *अहो ! आश्चर्य है कि यौगन्धरायण आदि महात्माओं को जीतने वाले, महामंत्री सम्पत्कर की बुद्धि बहुत श्रेष्ठ है। जैसे कि*

वात्सल्यं न वहत्यपत्यविषये व्याक्षिप्यते न क्षणं
दाक्षिण्येन समीहिते नववधू वर्गेऽपि धीराशयः

निष्णातः कुटिले नयाध्वनि चरन्नाचारपूतः प्रभो-
र्दुःसाध्यानपि साधयत्यभिमतानर्थान्सुसाध्यानिव।।१४।।

हिन्दी-अनुवाद- *सन्तान के बारे में वात्सल्य मोह नहीं करते हैं। एक क्षण को भी व्यर्थ नहीं होने देते। उदारता पूर्वक व्यवहार किये गए नवयुवतियों के समूह में भी धैर्ययुक्तचित्त बने रहते हैं। कुटिल नीतिमार्ग पर चलते हुए पारंगत हो गए हैं और स्वामी के दुःसाध्य अभीष्ट कार्यों को भी सुसाध्य बना कर सिद्ध कर देते हैं।।१४।।*

अपि च- *और भी*

अस्याश्चर्यमयस्य मन्त्रगतयः स्वैरन्तरङ्गैरपि
ज्ञायन्ते न विधेरिवातिकुटिला वैदग्ध्यसीमाभुवः।

श्रूयन्ते प्रतिभूभृतां वसतयस्त्वङ्गत्तुरंगावली-
विश्वोत्खेलखुराग्रखण्डित मणि क्षोणीतलाः केवलम्।।१५।।

हिन्दी-अनुवाद- *आश्चर्यमय उन (महामंत्री) की मंत्रणागतियाँ विधाता की अत्यन्त कुटिल निपुणता की सीमाभूमियों (सीमाक्षेत्रों) की तरह अपने अन्तरङ्गों (समीपीजनों) के द्वारा भी समझी नहीं जाती हैं। प्रतिद्वन्द्वी राजाओं की निवासभूमियाँ सरपट दौड़ते हुए घोड़ों के जगद्व्यापी खेलों में खुरों के अग्रभाग से खण्डित मणिखचित पृथ्वीतलवाली होकर केवल सुनी जाती हैं।।१५।।*

किं च- *और भी*

शेषे प्रज्ञाविशेषः स्फुरति यदि किमुच्छ्द्मना पद्मनाभः
संरम्भात्तेन तेन स्वयमसुरवधव्यग्रभावं दधार।

वाचामीशोऽपि सत्यं यदि विपुलमतिः श्रूयते वज्रिणः किं
दैत्यावस्कन्दबन्दिग्रहण परिभव श्यामला शक्रलक्ष्मीः।।१६।।

हिन्दी-अनुवाद- *यदि शेषनाग में अधिक बुद्धि स्फुरित होती है तो (उसके स्वामी) विष्णु ने क्यों उस कपट से युद्धवेग के द्वारा स्वयं असुरवधों के प्रति व्यग्रता को धारण किया? यदि वाचस्पति (बृहस्पति) सचमुच विपुल बुद्धि वाले सुने जाते हैं तो क्यों इन्द्र के दैत्यों के द्वारा लूट कर बन्दी वनाये जाने के कारण तिरस्कार से कृष्णवर्ण की इन्द्र लक्ष्मी हो गयीं? ।।१६।।*

सम्प्रति प्रेषिताश्च प्रतिदिशं सेनापतय इति। (कर्णं दत्त्वा आकाशमवलोक्य)

हिन्दी-अनुवाद- *इस समय सभी दिशाओं से सेनापतियों को भेज दिया है। (कान लगाकर। आकाश की ओर देख कर।)*

अमरसरिदुपान्त भ्रान्तचक्राह्वचक्र
भ्रममुरसिजभारैः काश्चन व्यञ्जयन्त्यः।

किमु विततनितम्बाभोगसंवाहवेग
स्खलनमुखरचञ्चत्काञ्चयः संचरन्ति।।१७।।

हिन्दी-अनुवाद- *कुचों के भार से या स्थूल कुचों के कारण गंगा नदी के किनारे भ्रमण करते हुए चकवा पक्षियों के समूह का भ्रम उत्पन्न करती हुई तथा विस्तृत नितम्ब प्रदेश के सन्चालन के वेग से मुखरित एवं चलायमान करधनी वाली कुछ युवतियाँ टहल रही हैं ।।१७।।*

अग्रतो विलोक्य सविस्मयम्

(आगे देखकर, आश्चर्य के साथ)

तुलाकोटिक्काण प्रणयिभिरवाप्तैरिव गते
र्विलासे शिष्यत्वं भवनकलहंसैरनुगता

सुधामुग्धैरङ्गैः शशिन इव गर्भाद्विगलिता
कुरङ्गाक्षी केयं तिलकयति लीलावनभुवम् ।।१८।।

हिन्दी-अनुवाद- *तुलना की कोटिवाले शब्द के प्रेमी घरेलू राजहंस जिसकी चाल की भंगिमा प्राप्त करने के लिए शिष्य बन गये हैं, उनके द्वारा अनुगमन की जाती हुई तथा अमृत के समान मुग्धकारी अंगों से मानों चन्द्रमा से टपकी हुई, यह कौन मृगनयनी लीलावन की भूमि को तिलक के समान बना रही हैं ।।१८।।*

(पुनरवलोक्य)
(फिर देखकर)

उच्चञ्चुपञ्जरचकोरकचर्व्यमाण-
पूर्णेन्दुसुन्दर तराननचन्द्रिकेयम्।

देव्याः कथं परिजनप्रमदाजनेन
नीतैव मन्दिर ममन्दकुतूहलायाः।।१६।।

हिन्दी-अनुवाद- *ऊपर की ओर चोंच तथा देह को उठाए हुए चकोर पक्षी द्वारा आस्वादित पूर्णचन्द्र की अपेक्षा अधिक सुन्दर मुखचन्द्रवाली यह बाला प्रचुर कुतूहल वाली महारानी की सेविकागण द्वारा क्या मन्दिर में ही पहुँचा दी गयीं? ।।१६।।*

(विचिन्त्य) (सोचकर)

एताः काश्चन निश्चलालकलताश्चिन्तातिरेकश्रम-
स्विद्यद्भालतटा यदम्बरतले भ्राम्यन्ति वामभ्रुवः।

श्री चालुक्यकुलोद्वहे कलयति त्र्यक्षोपचर्यामिह
स्नस्ता काचन लिङ्गलङ्घनवशात्तद्वेद्मि विद्याधरी।।२०।।

हिन्दी-अनुवाद- *ये जो निश्चल केशलता वाली तथा चिन्ता के अतिरेक के कारण श्रम से पसीना छोड़ते हुए , ललाट तट वाली कुछ सुन्दरियाँ आकाश में घूमती हैं, उनमें से कोई (एक) शिवलिङ्ग के लंघन करने के कारण अधः पतित होकर यहाँ श्री चालुक्य वंश में*

विवाह करने के लिए शिव की परिचर्या कर रही है, उसे मैं विद्याधरी समझता हूँ ।।२०।।

(सचमत्कारम्) सत्यस्वप्नः सांप्रतममात्यः। तेनैवंविधेन व्यतिकरेण मां प्रति भर्तुश्चक्रवर्तित्वमभिहितमासीत्। तत्परिजनमुखेन।

हिन्दी-अनुवाद- (चमत्कार के साथ) अब महामंत्री का स्वप्न सत्य हो गया । उन्होंने इस प्रकार के सम्बन्ध से स्वामी का चक्रवर्ती होना मुझसे बताया था । इसलिए सेवक के मुख से –

जानीते निपुणा कथंचन मनाग्देवी च सीता यथा
वारंवारमसौ तथा नरपतेः संदर्शनीया मया।

अन्योन्यं हृदये तयोः स्पृहयतोर्भावेऽति भूमिं गते
पर्याप्तः कुसुमायुधः स भगवान्पारावताराय नः।।२१।।

हिन्दी-अनुवाद- निपुण तथा सीता जैसी (पतिव्रता) महारानी किस प्रकार कुछ-कुछ जान गयी हैं। अब मुझे बार बार उसे राजा को दिखाना चाहिए। परस्पर कामना करने वाले उन दोनों के हृदय में प्रेमभाव के पराकाष्ठा पर पहुँच जाने पर हमें पार उतारने के लिए भगवान कामदेव पर्याप्त हैं ।।२१।।

तद्भवतु। सांप्रतमेव।

तो हो जाए। अभी ही।

लीलोद्याने भवनवलभौ रत्नवातायनेषु
क्रीडासौधे तदनु मदनोद्यानशालासुबालाम्।

इन्दोर्गर्भे चिरमिव धृतैरङ्ककैस्तामनङ्ग
स्याङ्गावाप्तौपुनरिव नवां सिद्धिमालेखयामि।।२२।।

हिन्दी अनुवाद- *क्रीड़ा करने के उपवन में, महल के सर्वोच्च भाग में, रत्नों के बने झरोखों में, खेलों के महल में, तत्पश्चात् कामवन की शालाओं में उस बाला को चन्द्रमा के भीतर चिरकाल से धारण किये अंगों से कामदेव के अङ्गों की पुनः प्राप्ति के लिए नूतन सिद्धि के रूप में चित्रित कर रहा हूँ।।२२।।*

(नेपथ्ये) (नेपथ्य में)

जयति विश्रामावसरो देवस्य। संप्रति

महाराज के विश्राम करने के अवसर की जय हो

इस समय

अन्योन्यं लज्जयेव प्रतिफलनमिषात्कुट्टिमात्तर्विशन्तः
पातालं भूमिपालाः किसलयित शिखाः पाणिबन्धैप्रणम्य

गच्छन्ति च्छत्रखण्डस्तबकित ककुभश्चित्रवादित्र जैत्र
ध्वाना कृष्ट प्रहृष्ट प्रचुर पुरवधू वीक्ष्यमाणा गृहाणि।।२३।।

हिन्दी-अनुवाद- *मानों परस्पर लज्जा के कारण (रत्नमय) पक्के फर्श के भीतर पड़ने वाली परछाईं के बहाने पाताल में प्रवेश करने वाले राजा लोग नवपल्लव के अग्रभाग जैसे हाथों को जोड़कर प्रणाम करके छातों के समूहों से दिशाओं को गुच्छाकार बनाते हुए तथा चित्र विचित्र वाद्यों एवं विजय जयकार की ध्वनियों से आर्कषित एवं प्रमुदित अनेक नगर बधुओं के द्वारा देखे जाते हुए (अपने अपने) घरों को जा रहे हैं।।२३।।*

अपि च- *और भी*

पञ्चास्रस्य त्रिलोकीहठ विजय महारम्भ संभारदीक्षा-
माचक्षाणा इवोच्चैर्जघन झणझणन्मेखलाचक्रवालैः।

ध्वस्ताम्भोजैः सुमिक्षं दिशि दिशि विशदैर्दर्शयन्त्यश्चवक्त्रै-
श्चन्द्राणां सान्द्रलीला तिलकित गतयो निर्गता वाररामाः।।२४।।

हिन्दी-अनुवाद- विशाल नितम्बों पर झन झन शब्द करती हुई, करधनी के घेरोंसे मानो कामदेव के तीनों लोकों पर हठपूर्वक विजय करने के महान आरम्भ की अधिकता की दीक्षा का उपदेश करती हुई तथा कमलों को परास्त करने वाले मुखों से प्रत्येक दिशा में सुभिक्ष (अन्न का बाहुल्य) ज्ञापित करती हुई और चन्द्रों की सघन लीलापूर्वक उत्तम गति जैसी गति वाली वेश्यायें (घरोंसे) निकल पड़ीं ।।२४।।

किं च।

विश्रान्तो मुरजध्वनिर्जलधर ध्वानानुकारी गताः
सङ्गीताङ्गणतस्तरङ्गित मुखज्योत्स्नारसा लासिकाः।

चण्डः केलिशिखण्डिनां न विरमत्यद्यापि नृत्योत्सव-
श्चञ्चच्चञ्चव एव किं च विचरन्त्यन्तश्चकोराङ्गनाः।।२५।।

हिन्दी-अनुवाद- और भी

मेघ की ध्वनि का अनुकरण करने वाला मृदंग का शब्द संगीत के प्रांगण से लहराती हुई मुखज्योति के रस से युक्त नर्तकियाँ चली गयीं। क्रीड़ा मयूरों का प्रचण्ड नृत्योत्सव अभी भी नहीं रुक रहा है। अभी भी चोंच चलाती हुई चकोरियाँ अन्तःपुर में विचरण कर रही हैं।।२५।।

प्रणिधिः- यत्पुनर्देवो विश्राममण्डपमलंकृतवांस्तन्नून मेतद्दर्न जन्मा मन्मथावेग एव विविक्तस्थानस्थितिमुपदिशति। तद्गत्वा यथोचितं विरचयामि। (इति निष्क्रान्तः)

गुप्तचर- जिसलिए महाराज ने विश्राममण्डप को अलंकृत किया है, इसलिए निश्चित ही इसके देखने से उत्पन्न काम का आवेग ही एकान्त स्थान में रहने कां उपदेश दें रहा है। इसलिए जाकर यथोचित रचना करता हूँ।

(यह कह कर चला गया)
शुद्ध विष्कम्भक समाप्त।

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च।)
(राजा विदूषक के साथ प्रवेश करता है।)

राजा- *(सौत्सुक्यम्) (उत्सुकता के साथ)*

धातुस्तन्मुखवर्तनाफलहकः श्यामावधूवल्लभ-
स्तल्लेखोद्यत तूलिकाग्र गलिकास्तारा: सुधाविप्रुषः।

तल्लावण्यरसस्य शेषममला सा शारदी कौमुदी।
तद्भ्रूनिर्मिति मानसूत्रमपि तच्चापं मनोजन्मनः।।२६।।

हिन्दी-अनुवाद- *(सृष्टि करने वाले) विधाता का उस (मेरी देखी हुई बाला) के निर्माण कालिक मुख के रखने का तख्ता तरूणी स्त्रियों का प्यारा है। उसकी रचना के लिए उद्यत कूँची के अग्रभाग से चुए हुए अमृतकण तारे हैं। उसके सौन्दर्य रस का शेष निर्मल शरद ऋतु की चाँदनी है। उसकी भौंहों के निर्माण में नापने का सूत्र भी कामदेव का प्रसिद्ध धनुष है। ।।२६।।*

अपि च-

मज्जन्तीव दृशः कुरङ्गकदृशो लीलाविलासोर्मिषु
भ्रूलेखा सृजतीव विभ्रमशतैः कामाय दामावलिम्।

लावण्यामृतनिर्झरः स्नपयतीवङ्गानि किं चाधर
स्तारां सिञ्चति पद्मरागकिरणोत्सेकैरिवैकावलीम्।।२७।।

हिन्दी-अनुवाद- *और भी,*

मृगनयनी की लीलाविलास रूपी लहरों में आँखें डूब सी रही हैं। (उसकी) भौहों की रेखा सैकड़ों प्रकार की कामकेलियों द्वारा कामदेवपुष्पमालावली रच रही हैं। (उसके) सौन्दर्य रूपी अमृत

का झरना अंगों को नहला सा रहा हैं और (उसका) अधर मोतियों की माला को लालमणि की किरणों के प्रवाह से सींच सा रहा है।।२७।।

अपि च-

त्रिवलिवलित लीलालोलवेणी कलापं
किमपि रसविभूतेस्तिर्यगा केक राक्षम्।

कलित कुटिलकण्ठं दर्शनोत्कण्ठ यास्या
लिखित मिव ममान्तस्तन्मुखं मन्मथेन।।२८।।

हिन्दी-अनुवाद- *और भी*

त्रिवली पर पड़ने वाली लीलापूर्वक चञ्चल बालों की चोटी से युक्त, रस की विभूति के कारण कुछ तिरछी और ऐंची आँखों से युक्त तथा देखने की उत्कण्ठा से उस (बाला) का वह ग्रीवा को वक्र किए हुए उसके उस मुख को कामदेव ने मेरे अन्तःकरण में चित्रित कर दिया हैं।।२८।।

विदूषक- *भो, किं वि पुच्छामि।*

संस्कृत छाया- *भोः किमपि पृच्छामि।*

हिन्दी-अनुवाद- *अजी! मैं कुछ पूछता हूँ।*

राजा- *(तदवधीरणेन)*

विधत्ते निःसेकं सहज रमणीयस्तरूणिमा
वपुर्वल्लीं चित्रैः कवचयति लीला किसलयैः।

विलासव्यापारः किमपि कमलोस्थो नयनयो-
रनङ्गं तन्व्यङ्ग्या स्त्रिभुवनजिगीषुं रचयति।।२९।।

हिन्दी-अनुवाद-

राजा- *(उसकी अवहेलना से)*

सुन्दरी का स्वभावतः रमणीय यौवन देहलता को सींचने-सँवारने से परे बनाता है और बहुरंगी लीलारूपी नव पल्लवों से कवचित (सुरक्षित) करता है। नेत्र कमलों में स्थित अवर्णनीय विलास-चेष्टा अनंग (काम) को तीनों लोक पर विजय करने का इच्छुक बनाती है।।२६।।

विदूषक- *भो, का एसा लीलावणप्पवेसे पिअवअस्सेण दिट्ठा।*

सं० छाया- *भोः, कैषा लीलावनप्रवेशे प्रियवयस्येन दृष्टा।*

हिन्दी-अनुवाद- *अजी ! लीलावन में प्रवेश करने पर प्रियमित्र ने किसको देखा?*

राजा-

ध्यानान्ते विधिना प्रणम्यन्वरणौ चन्द्रार्धमौलेरहं
कैश्चिज्जप्य पदैः प्रदक्षिणयितुं यावत्स्ममभ्युद्यतः।

तावत्काचिदनङ्गजङ्गमपुरीवाग्रे मनोग्राहिणी
रम्भास्तम्भमनोहरोरूयुगला बाला भवच्चक्षुषोः।।३०।।

हिन्दी-अनुवाद- *ध्यान के अन्त में मैं शंकर के चरणों को विधिपूर्वक प्रणाम करके कुछ जपनीय पदों से प्रदक्षिणा करने के लिए ज्यों ही तैयार हुआ, त्यों ही कामदेव की जङ्गमपुरी के समान मन का आकर्षण करने वाली तथा कदली स्तम्भ के समान सुन्दर दोनों जाँघों वाली कोई बाला आँखों के सामने हो गयी ।।३०।।*

स्वप्नोऽसौ किमुतेन्द्रजालमपरं किं वा किमप्यद्भुतं
यत्सा कान्तितरङ्गिताङ्गलतिका दृष्टा कुरङ्गेक्षणा।

उल्लेखः स नवीन एव सुमतेः कस्यापि रूपे विधेः।
संवादोऽपि न यस्य पङ्कजशशिज्योत्स्नामृणालादिभिः।।३१।।

हिन्दी-अनुवाद- *क्या वह स्वप्न था या दूसरा इन्द्रजाल या कोई अद्भुत वस्तु जो वह कान्ति से लहराती हुई अंगलता वाली मृगनयनी देखी गयी। रूप में वह किसी विधाता की सुमति की नवीन ही देन है, जिसकी तुलना कमल, चन्द्रमा, प्रकाश, तथा मृणाल आदि से नहीं की जा सकती ।।३१।।*

विदूषक- *भो, एदस्स उज्जाणप्पदेसस्स किं करीअदु जत्थ अणत्थो एरिसो समावडिदो।*

सं० छाया- *भोः, एतस्योद्यानप्रदेशस्य किं क्रियतेयत्रानर्थ ई दृशः समापतितः।*

हिन्दी-अनुवाद- *अजी, इस उद्यान-प्रदेश से क्या करना है जहाँ ऐसा अनर्थ आ पड़ा है।*

राजा- *मूर्ख,*

तदेकं देवस्य स्पशतु मदनस्यास्पदपदं
लतास्तास्तत्रत्याः स्तबकयतु चैत्रः प्रतिदिनम्।

असौ दृष्टा यत्र क्षणममललावण्यसरसी
जगन्नेत्राचम्यं किमपि दधती कान्तिसलिलम्।।३२।।

हिन्दी-अनुवाद- *मूर्ख, अकेला वह (उद्यान) कामदेव के निवासस्थल का स्पर्श करे। वहाँकी लताओं को मधुमास (वसन्त-फूल के) गुच्छों से प्रतिदिन युक्त रखे, जहाँ निर्मल सौन्दर्य की सरसी (सरोवर) संसार के नेत्रों के लिए आचमन करने योग्य अनिर्वचनीय कान्ति जल धारण करती हुई क्षणभर के लिए देखी गयी ।।३२।।*

विदूषक- *भट्टिणो संदावदाअणं ति भणाभि।*

सं० छाया- *भर्तुः संतापदायकमिति भणाभि।*

हिन्दी-अनुवाद- *स्वामी के लिए सन्तापदायक है, ऐसा मैं कहता हूँ।*

राजा- सखे,

चान्द्री वर्तिर्नयन युगले जीवलोकस्य सैका
सा साम्राज्ये कुसुमधनुषः कीर्तिहेतुः पताका।

तत्प्राप्त्याशा विवशमनसा केनचित्तप्यते चे-
न्निः संबन्धं कथयतु भवान्कस्तदीयोऽपराधः।।३३।।

हिन्दी-अनुवाद- मित्र,

वह एक मात्र बाला लोगों के युगल नेत्रों में चन्द्रमा की बत्ती या अंजन (के समान) है। वह कामदेव के यश की हेतुभूत पताका है। उसकी प्राप्ति की आशा से पराधीन मन वाला कोई यदि ताप का अनुभव करता है तो आप ही सम्बन्ध रहित होकर बताइए कि (इसमें) उसका क्या अपराध है? ।।३३।।

विदूषक- *(छोटिकां दत्त्वा।) जइ एव्वं अत्थि विवेओ ता कीस ण विरज्जीअदि।*

सं० छाया- *यद्येवमस्ति विवेकस्तत्कुतो न विरज्यते।*

हिन्दी-अनुवाद- *(चुटकी बजाकर) यदि ऐसा विवेक है तो विरक्त क्यों नहीं हो जाते?*

राजा- *अनभिज्ञोऽसि। कथ्यते। पश्य।*

रागः कस्यचिदेति चेतसि पदं यः काकतालीयतः
कस्यांचिन्न विवेकवारिविसरैर्धौतोऽपि निर्यात्यसौ।

माञ्जिष्ठादपि सोऽन्य एव किमपि स्थैर्यास्पदं मन्मथे-
नावर्त्येव निजेन बाण शिखिना चित्तैक्यमापादितः।।३४।।

राजा - *तुम अनभिज्ञ हो। कहता हूँ! देखो!*

हिन्दी-अनुवाद- जो अनुराग काकतालीय न्याय से किसी (पुरूष) के चित्त में किसी (स्त्री) के प्रति स्थान प्राप्त कर लेता है, वह विवेक रूपी जल के फैलाव से धुलने पर भी नहीं निकलता है। वह मजीठ के रंग से भी भिन्न कुछ और स्थिरता को प्राप्त करके कन्दर्प के द्वारा मानों दुहराया जाकर अपने बाण के अग्रभाग से चित्तों की एकता को प्राप्त करा देता है ।।३४।।

विदूषक- अध किं ति देवी दुम्मणायन्ति व्वमये लक्खिदा।

छाया- अथ किमिति देवी दुर्भनायमानेव मया लक्षिता।

हिन्दी-अनुवाद- अच्छा तो महारानी को मैंने उदास (खिन्नचित्त) सा क्यों देखा?

राजा- शृणु। निवेदयामि।

अद्योद्याने मरकतमयीं वापिकामुत्तरेण
स्वप्ने दृष्टा प्रकृतिमधुरा माधवीमण्डपान्तः।

काप्येणाक्षी रतिरिव मया विप्रयुक्ता स्मरेण
स्मारं स्मारं किमपि दधती दुःसहा मोहनिद्राम्।।३५।।

हिन्दी-अनुवाद- राजा - सुनो ! बताता हूँ ।

आज उद्यान में मरकतमणि निर्मित बावड़ी के उत्तर माधवी लता के मण्डप में मधुर स्वभाव वाली किसी मृगनयनी को जो कन्दर्प से वियुक्त रात्रि के समान कुछ बारबार स्मरण करके दुःसह मोहनिद्रा धारण कर रही थी, स्वप्न में मैंने देखा ।।३५।।

विदूषक- तदो।

सं० छाया- ततः।

हिन्दी-अनुवाद- तब क्या हुआ?

राजा-

अम्बत्रयम्ब कपक्ष्मलाक्षि भगवन्विश्वैक वीर स्मर
स्मर्तव्या जननान्तरेऽपि युवयोः कारूण्यलेशादहम्।
अस्मिञ्जन्मनि तावदुन्मद सुरस्तम्बेरमाकृत्रिम
क्रीडामन्दगतिः स सुन्दर्वपुर्नो नेत्रमैत्रीं गतः।।३६।।

हिन्दी-अनुवाद- *माता! तीनों आँखों में सुन्दर बरौनी से युक्त नेत्रवाली! भगवन्! विश्व में एक मात्र वीर! कन्दर्प! आप दोनों की कृपा के सम्बन्ध से मैं दूसरे जन्म में भी स्मरण करने योग्य हूँ। इस जन्म में तो मदमस्त ऐरावत की स्वाभाविक क्रीड़ाकालिक मन्दगति के समान चाल वाले उन सुन्दर शरीरधारी से नेत्र-मिलन नहीं हुआ ।।३६।।*

एवं पुनः पुनरुदीर्य विदीर्यमाणं
वज्राग्रभिन्नमिव सा हृदयं दधाना।
मोहं गता कुचतटे नयनाम्बुलेशै-
रासूत्रित त्रिचतुरापरहारलेखा।।३७।।

हिन्दी-अनुवाद- *इस प्रकार बार बार कह कर वज्र के अग्रभाग से फाड़े हुए के समान विदीर्ण होते हुए हृदय को धारण करती हुई तथा कुचतट पर आँसू के (गिरनेके) सम्बन्ध से मानों सूत्राकार तीन चार अन्य हारलेखाओं से युक्त होती हुई वह मूर्च्छित हो गयी।।३७।।*

विदूषक- हद्धी हद्धी पमादो। संकडे पडिदा महाणुभावा तदो।

सं० छाया- *हा धिक् हा धिक् प्रमादः। संकटे पतिता महानुभावा। ततः।*

हिन्दी-अनुवाद- *हाय धिक्कार है, हाय धिक्कार है।*

प्रमाद (असावधानी) हो गया। आदरणीया (बाला) संकट में पड़ गयी । तब क्या हुआ?

राजा-

अथ कथमपि संज्ञां प्राप्य दीर्घं श्वसन्ती
कुचपरिसरनृत्यत्तारहारावली का।
विचकिल वनगुल्मे नूतनीभूत वल्ली
वलयनिगलिता सा पाशबन्धे प्रवृत्ता।।३८।।

हिन्दी-अनुवाद- *अनन्तर कुचों के परिसर (तट) पर नाचती हुई ऊँची हारावली वाली उसने (बाला ने) किसी तरह चेतना पाकर लम्बी साँस लेती हुई, मदन वृक्षों के वनों के झुरमुट में नयी लता का फन्दा बनाकर गले में डाल लिया और वह फाँसी पर लटकने जा रही थी।।३८।।*

विदूषक- *(हस्तमुद्यम्य) अब्बह्मण्णम्, अब्बह्मण्णम्।*

सं० छाया- *अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्।*

हिन्दी-अनुवाद- *(हाथ उठा कर) अनर्थ हो गया, अनर्थ हो गया ।*

राजा- वैधेय, स्वप्नविधिरयम्।

हिन्दी-अनुवाद- *मूर्ख, यह स्वप्न की बात है।*

विदूषक- *तदो।*

सं० छाया- *ततः।*

हिन्दी-अनुवाद- *तब क्या हुआ ?*

राजा-

विरमरमणि प्राणत्यागे धृता किमिति स्पृहा
ननु भगवतः कंदर्पस्य त्वमुच्छ्वसितान्तरम्।
इति शशिमुखीमुक्त्वा यावद्बिभर्मि पटाञ्चले
चटुलरशना तूर्णं तावद्गता क्वचिदेव सा।।३६।।

अनन्तरमिदं जातम्। अस्ति च स्वप्नदृष्टजनस्य संवादः। तन्न जाने किं भविष्यति।

हिन्दी-अनुवाद- हे रमणी ! रुक जाओ! प्राण त्यागने की इच्छा क्यों की है? तुम निश्चित ही भगवान कामदेव की दूसरी साँस या प्राण हो। इस प्रकार चन्द्रमुखी से कह कर मैं ज्यों ही उसका आँचल पकड़ता हूँ, त्यों ही वह चन्चल करधनी वाली शीघ्र ही कहीं चली गयी ।।३६।।

यह बाद में हुआ! स्वप्न में देखे गए प्राणी की समानता (समान रूप वाली स्त्री यहाँ) है। इसलिए नहीं जानता हूँ कि क्या होगा ?

विदूषक- कल्लाणपिसुणं एदं सव्वं भवदित्ति किं अण्णम्। अविण्णादं देवीए।

सं० छाया- कल्याणपिशुनमेतत्सर्वं भवतीति किमन्यत् अपि ज्ञातं देव्या।

हिन्दी-अनुवाद- यह सब तो कल्याण का सूचक है, दूसरा क्या (होगा) क्या महारानी ने जान लिया है?

राजा- अथ किम्?

हिन्दी-अनुवाद- और क्या?

विदूषक- परूखक्खरं आलविअ ण किं पि अण्णं आ अरिदम्।

सं० छाया- परूषाक्षरमालप्य न किमप्यन्यदाचरितम्।

हिन्दी-अनुवाद- कठोर शब्द बोल कर कुछ और व्यवहार तो नहीं किया ?

राजा- नो किञ्चित्परूषाक्षरं निगदितं नो दर्शितः संभ्रमः
कासावित्युपहासगर्भितरूषा प्रश्नोऽपि नाविष्कृतः।

निःश्वासः परिवृत्त्य किं तु शनकैः श्यामीकृत प्रज्वल
न्नानारत्नमय प्रदीपकिरणश्रेणिर्विमुक्तस्तया।।४०।।

हिन्दी-अनुवाद- कठोर शब्द कुछ नहीं कहा, विक्षोभ नहीं दिखाया । 'वह कौन है'? इस उपहास गर्भित क्रोध से प्रश्न भी नहीं किया किन्तु धीरे से करवट बदल कर जलते हुए अनेक रत्नमय प्रदीपों की किरणपंक्ति को काला बनाने वाली (उसने) लम्बी साँस छोड़ी ।।४०।।

विदूषक- एस ज्जेव्व कराला गरलकण्ठी। अहवा तुज्झ किं जादम्। तुअं लुलुल्लरेहिं बोलेहिं पाअपडणेहिं पुणो पि अप्पवसं करेसि। अहं जेव्व एक्कोणिब्भच्छिआमि। एदस्स दुट्ठबह्मणस्स एदं खु सव्वं विलसिदं त्ति।

सं० छाया- एषैव कराला गरल ग्रन्थिः। अथवा तव किं जातम्। त्वं मधुरैर्वचनैः पात पतनैः पुनरप्यात्म वशां करिष्यसि। अहमेवैकोनिर्मर्त्स्ये। एतस्य दुष्ट ब्राह्मणस्यैतत्खलु सर्वं विलसितमिति।

हिन्दी-अनुवाद- यही भयंकर विष की गाँठ है अथवा तुम्हारा क्या हुआ (क्या बिगड़ा) तुम तो मधुर वचनों से तथा पैरों पर गिरने से पुनः देवी को अपने अधीन कर लोगे। मैं ही अकेला डाँटा जाऊँगा कि इसी दुष्ट ब्राह्मण की यह सब करतूत है।

राजा- कथं न जातम्।

न यस्मिन्दाक्षिण्यं परिणत मियत्त्वस्य विषये
विकल्पाधिष्ठानं तदपि विहितं प्रेम सुदृशः।

इतः शून्यं चेतः स्मरकितव संसार चकितं
न जानीमो धातुः किमधिकरणः सूत्रणविधिः।।४१।।

हिन्दी-अनुवाद- राजा - क्यों नहीं हुआ ?

जिसमें सुजनता निश्चित परिमाण के विषय में परिपक्व नही है तो भी सुनयना का प्रेम विकल्प का अधिष्ठान बनाया गया है। इससे (मेरा) चित्त धूर्त्त कन्दर्प के सञ्चार से भयभीत है। नहीं

जानता हूँ कि विधाता की क्रम में बाँध कर रखने की विधि का क्या आधार है ? ।।४१।।

(नेपथ्ये)

(नेपथ्य में)

सुखाय कुसुम समय समारम्भो देवस्य। सम्प्रति हि

रक्ताशोक द्रुमाणां लसति किसलयश्रेणिरार्द्रापराध
प्रेयः शौण्डीर्यपीत द्रविड वरवधू चारु बिम्बाधरश्रीः।

उन्मेषश्चम्प का नाम जरठमरठी गण्डपाली विलासः
कर्णाटी हास्यलेशान्विच किल मुकुल स्फूर्तयो वार्तयन्ति।।४२।।

हिन्दी-अनुवाद- *वसन्त ऋतु का आरम्भ महाराज के सुख के लिए हो। इस समय- लाल अशोक वृक्षों की नव पल्लव पंक्ति नये अपराध के प्रेम और उदण्डता से युक्त एवं पीत रंग के द्रविड़ देशवासी, वरबधू की सुन्दर बिम्बाफल जैसी अधर शोभा को धारण कर रही है। चम्पा का विकास युवती मराठी स्त्रियों के कपोलस्थल के विलास को धारण कर रहा है। मदन वृक्ष की कलियों के विकास कर्णाटक की स्त्रियों के हास्यों को पुष्ट करते हैं। ।।४२।।*

कान्ते नूतन चूतमञ्जरि धनुर्दण्डेऽधुनासंदध-
त्कंदर्पः कलकण्ठपञ्चम रव ब्रह्मास्त्रमव्याहतम्।

दोर्युग्मं वलयी करोति युगपत्कर्तुं त्रिलोकोपरि
स्वामाज्ञां रतिवक्त्रपत्रशबलं मौर्वीकिणाङ्काङ्कितम्।।४३।।

हिन्दी-अनुवाद- *इस समय मनोहर नवीन आम्रमन्जरी रूप धनुष के डंडे में कोकिल के पञ्चम स्वर रूपी अव्याहत (व्याघात या बाधा रहित) ब्रह्मास्त्र को जोड़कर कन्दर्प, तीनों लोक पर एक साथ अपना शासन करते हुए, रति के मुख पर बनाए गये विशेष प्रकार के*

चिह्न या बूटे आदि के समान बहुरंगी प्रत्यन्चा के घर्षण से होने वाले किण (घट्ठे) के चिह्न से अंकित अपनी दोनों भुजाओं को कंकण के समान कर रहा है।।४३।।

विदूषक- *(अन्यतः)*

कावेरीणालि एरीतरलणनिउणा णम्मदाणम्मआरा
कञ्चीए चुम्बणद्दा तुमुलिद मुरलालोल कल्लोलमाला।

एते गोदावरीए लहरि परिचिदा दिण्णसिप्पा कडप्पा
कंदप्पोद्दी वणेच्छा गहिद विहरणा दाहिणा एन्ति वाआ।।४४।।

सं० छाया- कावेरीनालिकेरी तरल न निपुणा नर्मदा नर्मकाराः
काञ्च्याश्चम्बनाद्री स्तुमुलित मुरला लोल कल्लोलमालाः।

एते गोदावर्या लहरिपरिचिता दत्तसि प्राकट प्राः
कंदर्पोद्दीपनेच्छागृहीत विहरणा दक्षिणा यान्ति वाताः।।४४।।

हिन्दी-अनुवाद- *(दूसरी ओर मुँह करके।) कावेरी नदी के किनारे होने वाले नारियलों को तरल (सजल) बनाने में निपुण, नर्मदा नदी का परिहास (विनोद) करने वाले काञ्ची नगरी के चम्बानद से आर्द्र होने वाले मुरला नदी के चंचल तंरगों से परिचित और सिप्रा नदी को शीतलता प्रदान करने वाले और कन्दर्प को उद्दीपित करने की इच्छा आग्रहयुक्त विहार करने वाले ये दक्षिण पवन बह रहे हैं। ।।४४।।*

राजा- क्वचिदविषये वा सारङ्गीतरङ्गित लोचना
हृदि कवचितः पञ्चेषुर्मे विकुञ्चित कार्मुकः।

अयमपि बत प्राप्तश्चूताङ्कुरा कुलकोकिला
कलरवजयोद्घोषः कालः किमत्त समीहितम्।।४५।।

हिन्दी-अनुवाद- *अथवा हरिणी के समान चंचल नेत्रों वाली बाला कहीं, दृष्टि से परे स्थान में है और मेरे हृदय में पञ्चबाण (कामदेव) कवच से*

युक्त एवं धनुष ताने हुए है। खेद है कि यह आम के अंकुरों से भरी कोयलों की मधुर ध्वनि में जय का उद्घोष करने वाला समय आ गया है। यहाँ क्या अभीष्ट होगा ? ।।४५।।

(सनिर्वेदोत्कण्ठम्।)

आवासः किलकिञ्चितस्य जयिता पाश्वे विलासालसा
कर्णे कोकिल कामिनी कलरवः स्मेरो लतामण्डपः।

गोष्ठी सत्कविभिः समं कतिपयैर्मुग्धाः सुधांशोः कराः
केषांचित्सुखयन्ति चात्र हृदयं चैत्रे विचित्रोत्सवे।।४६।।

हिन्दी-अनुवाद- *(खेद और उत्कण्ठा के साथ)*

किलकिञ्चित् नामक हाव विशेष का निवास, बगल में आमोद प्रमोद सेअलसाई हुई प्रियतमा, कानों में कोयल एवं कामिनी का कलरव, विकसित लतामण्डप कुछ सत्कवियों के साथ वार्तालाप तथा चन्द्रमा की सौम्य किरणें यहाँ विचित्र उत्सव वाले चैत्र में किन्हीं लोगों के हृदय को सुख पहुँचाती हैं।।४६।।

सम्प्रति

कुर्वन्ति कोकिलकलोपहतिं लतासु
रुन्धन्ति वासभवनेषु समीर मार्गान्।

किं तन्न यद्विरहिणी निवहस्य सख्यः
सावज्ञमाकुल तया कलयन्त्यजस्रम्।।४७।।

हिन्दी-अनुवाद- *इस समय,*

वियोगिनियों की सखियाँ लताओं पर कोयलों के बोलने से रोकती हैं, और रहने के गृहों में पवन के मार्गो में रुकावट डालती हैं। ऐसा कौन सा उपाय है, जिसे वे व्याकुलता के कारण अवहेलना पूर्वक निरन्तर करती रहती हैं।।४७।।

(विचिन्त्य) तत्क्वायमात्मा विनोदयितव्यः।

हिन्दी-अनुवाद- *(सोच कर) तब मनोविनोद कहाँ करना चाहिए?*

विदूषक- *भो वअस्स, अहिणवमहुरसतरङ्गिद ललिद लदालिङ्गिद कुसुमहसिद तरुण तरुमण्डलं कुण्डलिद कोदण्ड चण्डप्पहार पडुमअण सुहडपज्जलि ज्जन्त सहआरङ्कुर सिलीमुहं रज्जन्तकण्ठकलअण्ठ चारूपञ्चमस्सर महुरिज्जन्तं मअणुज्जाणं पेक्खन्तो णिव्वुइं उव्वहिस्सदि भवं।*

सं० छाया- *भो! वयस्य, अभिनव मधुरस तरङ्गित्त ललितलता लिङ्गित्त कुसुमहसिततरुणतरुमण्डलं कुण्डलितकोदण्डचण्ड प्रहारपटु मदनसुभट तीक्ष्णी क्रियमाण सहकाराङ्कुर शिलीमुखं रज्यत्कण्ठ कलकण्ठ चारू पञ्चमस्वरमुखरी क्रियमाणं मदनोद्यानं पश्यन्निर्वृतिं मुद्वीक्ष्यति भवान्।*

हिन्दी-अनुवाद- *हे मित्र! एकदम नवीन (ताजा) मधुर रस से लहराते हुए सुन्दर लताओं से आलिङ्गित्त और पुष्पों से हँसते हुए तरुण वृक्षों के समूह वाले, कुण्डलाकार धनुष से प्रचण्ड प्रहार करने में निपुण कन्दर्प के सुवीरों द्वारा तीक्ष्ण किये जाते हुए अति सुगन्धित आम्रवृक्षों के अकुंरो पर स्थित भौंरो वाले तथा सुरीले स्वर वाले, कोकिलों के सुन्दर पञ्चम स्वर से मुखरित किये जाने वाले मदनोद्यान को देखते हुए आप प्रसन्नता का अनुभव करेंगें।*

राजा- सहृदयों मे वयस्य

यत्कोकिलाकलरवं कलयत्यनङ्ग-
ञ्चूताङ्कुरं धनुषि यद्विजयास्त्रहेतोः।

यच्च स्मितं सुमनसां स समित्प्रपञ्चो
जीवातवे विरह पावक डम्बरस्य।।४८।।

हिन्दी-अनुवाद- राजा- मेरा मित्र सहृदय है।

कामदेव, जो विजय अस्त्र के लिए कोयल की मधुर ध्वनि को धनुष में, आम के अंकुर को और प्रसन्न चित्त पुरूषों की मुस्कराहट को प्रयोग में लाता है वह युद्ध का प्रपञ्च वियोगदग्ध पुरूष के पुनर्जीवन के लिए होता है। ।।४८।।

विदूषक- भो, एत्थ कहिं पि भविस्सदि देव्ववसेण दंसण गोअरे सा तेल्लोक्कसुन्दरीति भणामि।

सं० छाया- भोः, अत्र कुत्रापि भविष्यति दैववशेन दर्शनगोचरे सा त्रैलोक्य सुन्दरीति भणामि।

हिन्दी-अनुवाद- अजी, यहाँ कहीं भी वह त्रिभुवनसुन्दरी भाग्यवश दृष्टिगोचर हो जायेगी, यह मैं कहता हूँ।

राजा- एवमस्तु। उपदिश पन्थानम्।

हिन्दी-अनुवाद- ऐसा ही हो ! मार्ग बताओ।

विदूषक- इदो सेवागदणरिन्द सहस्ससंकिण्णं विलाससंचिअतेल्लोक्क सुन्दरजणं अत्थाणङ्गणं परिहरिअ चउक्किआए खिडिक्किआदो रअणदुआरिआए णीसरीअ कहिं पि एदु भवं।

सं० छाया- इतः सेवागत नरेन्द्र सहस्रसंकीर्ण विलास संचित त्रैलोक्यसुन्दर जनमास्थानाङ्गणं परिहृत्य चतुष्किकाया गवाक्षाद्रत्न द्वारिकाया निःसृत्य कुत्राप्येतु भवान्।

हिन्दी-अनुवाद- यहाँ सेवा के लिए आये हजारों राजाओं से व्याप्त विलास के. लिए एकत्रित तीनों लोक के सुन्दर सुन्दर जनों वाले सभाभवन के प्राङ्गण को छोड़कर तालाब के रत्न निर्मित द्वार की खिड़की से निकल कर कहीं भी आप आइए।

(इति परिक्रामतः।)

(ऐसा कहकर दोनों चले जाते हैं।)

विदूषक- *इदं तं कोइलपढिज्जन्त चारूपञ्चभाभिहाण मअणमन्त संमोहन मढं संतत ट्ठाणं वसन्त सुहडस्स। ता पविसदु पिअवअस्सो।*

सं० छाया- *इदं तत्कोकिलपठ्यमान चारू पञ्चमाभिधान मदनमन्त्रसंमोहन मठं? संत तास्थानं वसन्त सुभटस्य। तत्प्रविशतु प्रियवयस्यः।*

हिन्दी-अनुवाद- *यह वही कोयल के द्वारा गाये जाने वाले सुन्दर पञ्चम स्वर नामक मदन के संमोहन मंत्र का मन्दिर है जो महावीर वसन्त का सनातन स्थान है। इसलिए प्रिय मित्र प्रवेश करें ।*

(यह कह कर दोनों वैसा करते हैं।)

विदूषक- *पिअवअस्स, पेक्ख।*

लाडीतण्डव केलिखिन्न चरणच्छाआलवं पल्लवं
कङ्केली पअढेदि पाडलितरू जादो पसूणञ्चिदो।

एदं कुङ्कुमसिक्ककीर रमणी गण्डप्पहं चम्पकं
कम्पावेइ विओइणीओ बउलो फुल्लेहिँ सल्लेहिँ व।।४६।।

सं० छाया- *प्रियवयस्य, पश्य।*

लाटी ताण्डवकेलिखिन्न चरणच्छायालवंपल्लवं
कङ्केलिः प्रकटयति पाटलितरुर्जातः प्रसूनाञ्चितः।

एतत्कुङ्कुमसिक्त कीर रमणी गण्डप्रभं चम्पकं
कम्पयति वियोगिनीर्बकुलः पुष्पैः शल्यैरिव।।४६।।

हिन्दी-अनुवाद- *प्रिय मित्र ! देखिए ।*

अशोक वृक्ष, लाटदेश की रमणी के नृत्य क्रीड़ा में थके हुए पैर की कान्ति के समान पल्लव प्रकट कर रहा है। पाठर का पेड़ पुष्पों से लदा है। यह चम्पा पुष्प केसर से सिक्त कश्मीर की

सुन्दरी के कपोल स्थल की आभा के समान होने से और मौलसिरी शल्य तुल्य फूलों से विरहिणी स्त्रियों को कम्पित कर रहा है। ।।४६।।

(इति संस्कृतमाश्रित्य)

कुर्वाणाः प्राणनाथे प्रणयकलिरुषं जर्जरां गुर्जरीणां
भिन्दानाः सान्द्रमान ग्रहपटिममदं भेद पाटाङ्गनानाम्।
उन्मीलन्मालवस्त्री वदनपरिमल ग्राहिणो हूणरामा-
कामारम्भश्रमाम्भः कणहरण रसोल्लासिनो वान्ति वाताः।।५०।।

हिन्दी-अनुवाद- (संस्कृत का आश्रय लेकर)

गुर्जर (गुजरात) देश की स्त्रियों के (अपने) प्राणनाथ के प्रति प्रणयकलह में उत्पन्न क्रोध को जर्जर (शान्त) करते हुए, मेदपाट की रमणियों के सघन मान करने की पटुता के गर्व को चूर्ण करते हुए, मालवा की सुन्दरियों के खुले हुए मुख से सुगन्ध ग्रहण करते हुए और हूण जातीय स्त्रियों के संभोगकालिक श्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदों को मिटा कर आनन्द देते हुए पवन बह रहे हैं।।५०।।

राजा- (सोपहासम्।) अहोवर्णनाक्रमः। (इति निःश्वस्य समन्तादवलोक्य च।)

हिन्दी-अनुवाद- राजा- (उपहास के साथ।) अहा! वर्णन का क्रम (ढंग) कैसा है? (यह कह कर लम्बी साँस लेकर चारों ओर देखता है।)

लीलोद्याने चलकिसलयाः शाखिनः खेललोला-
श्लिष्यद्भृङ्गावलिवलयिता भान्ति यावन्त एते।
कोपावेशाद्वलयित धनुर्बद्ध गोधाङ्गुलित्र-
स्तावभ्द्यो ऽपि त्रिभुवनजयी धावतीवासमास्त्रः।।५१।।

एहि तस्यास्तरङ्गशालाया अभ्यन्तरे क्षणमुपविशावः।
(तथा कुरुतः)

हिन्दी-अनुवाद- लीला उद्यान में हिलते हुए नवपल्लव वाले तथा क्रीडा में चंचल होने से चिपकती हुई भ्रमरावली से आवेष्टित ये जितने वृक्ष शोभित हो रहें हैं, उन सब पर क्रोधावेश से वलयाकार धनुष लिए हुए तथा गोह के चमड़ेका दस्ताना पहने हुए त्रैलोक्य विजयी कामदेव दौड़ लगा रहा है। ।।५१।।

आओ ! उस तरंगशाला के भीतर कुछ देर बैठें ।

(दोनों वैसा करते हैं।)

विदूषक- (भित्तिमवलोक्य स चमत्कारम्।) अए, का एसा पच्चाएसो उव्वसीपमुहाणं अच्छाराणं सव्वङ्गलडहा आलिहिदा।

सं० छाया- अये, कैषा प्रत्यादेश उर्वशी प्रमुखाणामप्स रसां सर्वाङ्गलटभालिखिता।

हिन्दी-अनुवाद- (दीवाल को देखकर, चमत्कार के साथ)

अरे, यह उर्वशी आदि अप्सराओं को नीचा दिखाने के रूप में यह कौन सर्वांङ्ग सुन्दरी चित्रित की गयी है?

राजा- (अवलोक्योत्थाय च।)

एतत्तदेव सितदेवतरू प्रसून-
सौभाग्यमङ्गकमनङ्ग विलासवेश्म।

जैत्रः स एव च विलोचनयोर्विलासः
सैवेन्दु सुन्दरमुखी लिखिते यमास्ते।।५२।।

हिन्दी-अनुवाद- राजा - (देखकर और उठ कर)

यह वही श्वेत कल्पवृक्ष के फूलों के समान लावण्य या सुकुमारता से युक्त अङ्ग समूह है, जो कामदेव के विलास का घर है। वही नेत्रों का जयशील विलास है, और वही चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली यह चित्रित है।।५२।।

अपि च-

सैवोन्मज्जत्कनककलश प्रेक्षणीय स्तनुश्री-
मूर्तिर्लोकत्रय विजयिनी राजधानी स्मरस्य।
एतच्चक्षुस्तदपि विदलत्केतकी पत्रमित्रं
छाया सेयं नियतमधरे विद्रुमोत्सेक मुद्रा।।५३।।

हिन्दी-अनुवाद- (और भी) जल से निकले हुए सोने के घड़े के समान दर्शनीय शरीर की शोभा वही है। (यह) मूर्ति तीनों लोक को जीतने वाली तथा कामदेव की राजधानी है। यह नेत्र भी विभक्त हुए केवड़ेके पत्र के समान है। वही कान्ति निश्चित रूप से अधर में है जहाँ मूँगे की छिड़काव की मुद्रा है। ।।५३।।

विदूषक- भो, एसा चित्ते केण विलिहिदा।

सं० छाया- भोः एषा चित्रे केन विलिखिता।

हिन्दी-अनुवाद- अजी, यह चित्र किसने बनाया है?

राजा- मम तावन्मकरकेतुना। इह तु न जाने।

हिन्दी-अनुवाद- मेरा तो कामदेव ने। यहाँ तो नहीं जानता हूँ।

विदूषक- भो, भणामि किं पि जइ मे वअणं करेसि।

सं० छाया- भोः, भणामि किमपि यदि मे वचनं करोषि।

हिन्दी-अनुवाद- मैं कुछ कहता हूँ, यदि मेरी बात मानो।

राजा- किं न कथयसि?

हिन्दी-अनुवाद- क्यों नहीं कहते हो?

विदूषक- ओसरीयदु इमादो तरङ्ग साला दो तुरिदम्। कदापि देवी एत्थ आअच्छेदि।

सं० छाया- अपस्रियतामस्यास्तरङ्ग शालाया स्त्वरितम्। कदापि देव्यत्रागच्छति।

हिन्दी-अनुवाद- इस तंरगशाला से शीघ्र निकल चलो। कदाचित देवी यहाँ आ जाँय।

राजा- कुपिता कथमागच्छति सौभाग्याभिमान खण्डनानुप्रवेशात्।

हिन्दी-अनुवाद- वह कुपित है। कैसे आयेगी ? ऐसा करने से सौभाग्य के अपमान का खण्डन प्रविष्ट हो जायेगा या सौभाग्याभिमान खण्डित हो जायेगा ।

(ततः प्रविशति हारलतया, सह देवी।)

देवी- हारलते, ता कआपराधं पेक्खिअ एण्हिं सअं अणुसरन्ती अज्जउत्तेण केरिसी भणिआमि।

सं० छाया- हारलते, तत्कृतापराधं प्रेक्ष्याधुना स्वयमनु सरन्त्यार्यपुत्रेण की दृशी भण्ये।

हिन्दी-अनुवाद- (तदनन्तर हारलता के साथ देवी का प्रवेश)

हारलता, उनके किए हुए अपराध को देख कर इस समय स्वयं अनुसरण करती हुई मुझे आर्यपुत्र क्या कहेंगे?

हारलता- भट्टिणी, महानुभाव त्ति किं अण्णम्।

सं० छाया- भटिट्नि, महानुभावेति किमन्यत्।

हिन्दी-अनुवाद- महारानी, महानुभावा (उच्चविचारवाली) कहेंगें और क्या?

देवी- जदि दिट्ठआ परूसत्तण मुव्वहामि अज्जउत्तो आअसीअदि। अणुचिदकारिणी भवामि।

सं० छाया- यदि दिष्ट्या परूषत्वमुद्वहामि आर्यपुत्र आद्यास्यते। अनुचितकारिणी भवामि।

हिन्दी-अनुवाद- यदि भाग्य से कठोरता धारण करती हूँ तो आर्यपुत्र को आयास करना पड़ेगा । मैं अनुचित करने वाली हो जाऊँगी।

हारलता- देवीए विणा अण्णो को एदं मन्तेदि। विणा मअङ्कलेहं कुदो जोण्हाए विसरो।

सं० छाया- देव्या विनान्यः क एतन्मन्त्रयते। विना मृगाङ्कलेखां कुतो जोत्स्नाया विसरः।

हिन्दी-अनुवाद- महारानी को छोड़कर दूसरा कौन यह विचार करेगा ? चन्द्रमा के बिना चाँदनी कहाँ से फैलेगी?

देवी- अवि जाणासि किं उदिद्सिअ अज्जउत्तेण सिविणए पलविदम्।

सं० छाया- अपि जानासि किमुदिद्श्यार्यपुत्रेण स्वप्ने प्रलपितम्।

हिन्दी-अनुवाद- अरी, जानती हो, किस उद्देश्य से आर्यपुत्र ने स्वप्न में प्रलाप किया ?

हारलता- तुज्झव सेक्क जीविदस्स णत्थि अण्णावाणी। एवं विधा जेव्व सिविणआ (अ) विप्पलम्भका होन्ति। ण किं पि आसङ्कणिज्जम्।

सं० छाया- त्वद्वशैकजीवितस्य नास्त्यान्या वाणी। एवं विधा एव स्वप्ना (च) विप्रलम्भका भवन्ति। न किमप्याशङ्कनीयम्।

हिन्दी-अनुवाद- एक मात्र आपके वश में जीवन होने वाले की दूसरी वाणी नहीं होगी। इस प्रकार के स्वप्न ही वियोग कराने वाले होते हैं। कुछ भी आशङ्का नहीं करनी चाहिए।

(इति परिक्रामतः)
(यह कह कर दोनों घूमती हैं।)

देवी- कण्णसुन्दरी अज्जउत्तस्य दंसणगोअरं गदा।

सं० छाया- कर्णसुन्दरी आर्यपुत्रस्य दर्शनगोचरं गता।

हिन्दी-अनुवाद- कर्णसुन्दरी आर्यपुत्र की दृष्टि में आ गयी है।

हारलता- *रवि किरणाणं वि अगम्मे त्ति कधं एदम्। 'पुरोऽवलोक्य' एसो तरङ्गसालाए भट्टा वट्टदि। ता उपसप्पीअदि।*

सं० छाया- *रवि किरणानामप्यगम्येति कथमेतत्। एष तरङ्गशालां भर्ता वर्तते। तदुपसर्प्यते।*

हिन्दी-अनुवाद- *सूर्य किरणों के लिए भी अप्राप्य होने से यह कैसे हो सकता है? (आगे देखकर) ये स्वामी तरंगशाला में विराजमान हैं इसलिए पास चलें।*

देवी- *किं पि सुणन्तीओ उपसप्पम्ह।*

सं० छाया- *किमपि शृण्वत्य उपसर्पावः।*

हिन्दी-अनुवाद- *कुछ सुनते हुए पास चलें।*

राजा- *(बद्धाञ्जलिः।)*

आयासः किमयं वृथैव धनुषो देव स्मर स्वीकृत-
स्त्वत्पत्रिव्ययपात्रमत्र कतमः कात्यायनी कामुकः।
एतां लोकविलक्षणेन विधिना केनाऽपि येनासिषी
(यायां?) चित्रगतामपि प्रियतमां संजीव्य संप्रापय।।५४।।

हिन्दी-अनुवाद- राजा *(हाथ जोड़कर)*

हे कामदेव ! यह धनुष (उठाने) का प्रयास क्यों? स्वीकार किया? तुम्हारे बाण छोड़ने का पात्र यहाँ कौन गौरीपति (महादेव) हैं? जिस किसी भी लोकोत्तर प्रकार से, चित्रगत होने पर भी इस प्रियतमा को भलीभाँति जीवित करके (मुझे) प्राप्त करा दो।।५४।।

देवी- *कस्स कदे अज्जउत्तो एवं मन्तेदि।*

सं० छाया- *कस्य कृते आर्यपुत्र एवं मन्त्रयते।*

हिन्दी-अनुवाद- *किसके लिए आर्यपुत्र ऐसी मंत्रणा कर रहे है?*

हारलता- कस्स अण्णस्स। भोदिं जेव्व कुविदं जाणिअ चित्तपडिबिम्बेण अप्पाणं विणोदेदि भट्टा। ता उपसप्पीअदु।

सं० छाया- कस्यान्यस्य। भवतीमेव कुपितां ज्ञात्वा चित्रप्रतिबिम्बेनात्मानं विनोदयति भर्ता। तदुपसर्पताम्।

हिन्दी-अनुवाद- दूसरे किसके लिए । आप ही को कुपित जानकर चित्र के प्रतिबिम्ब से स्वामी मनोविनोद कर रहे हैं इसलिए पास चलें।

(तथा विधत्तः।)

(वैसा करती है।)

देवी- जेदु अज्जउत्तो।

सं० छाया- जयत्वार्यपुत्रः।

हिन्दी-अनुवाद- आर्यपुत्र की जय हो।

हारलता- जेदु जेदु भट्टा।

सं० छाया- जयतु जयतु भर्ता।

हिन्दी-अनुवाद- स्वामी की जय हो, जय हो।

देवी- (सविनयम्) मए एव्व तदा किं पि खलिदं ति अज्जउत्तेण ण अण्णधा भणिदव्वम्।

सं० छाया- मयैव तदा किमपि स्खलितमित्यार्य पुत्रेण नान्यथा भणितव्यम्।

हिन्दी-अनुवाद- (विनयपूर्वक) मैंने ही उस समय कुछ गलती की। आर्यपुत्र को अन्यथा नहीं कहना चाहिए।

राजा- त्रिजगति भवती परं ममैका
दिशति मुदं कुमुदस्य कौमुदीव।

प्रभुरसि कुरूषे रूषं कदाचिद्व्रजसि
कदापि यथारूचिं प्रसादम्।।५५।।

हिन्दी-अनुवाद- तीनों लोक में एक आप मुझे परम आनन्द प्रदान करती हैं जैसे कौमुदी (चाँदनी) कुमुद को (आनन्द) देती है। आप स्वामिनी हैं रुचि के अनुसार कभी आप क्रोध करती हैं और कभी प्रसन्नता प्रकट करती हैं।।५५।।

विदूषक- महाणुभावा देवी जा एवं पतिच्छत्तणं धारेदि।

सं० छाया- महानुभावा देवीं यैवं पत्यनुकूलत्वं धारयति।

हिन्दी-अनुवाद- देवी बड़े उच्चविचार की हैं जो इस प्रकार पति की अनुकूलता धारण करती हैं।

देवी- चित्रमवलोक्यापवार्य च) हारलदे, पेक्ख। कण्णसुन्दरिं जेव्व आलिहि अ अप्पाणअं विणोदेदि। तुमं तु मम ण पत्तिज्जसि। अहं जेव्व अविभिस्स कारिणिति किं भणीअदि।

सं० छाया- हारलते, पश्य! कर्णसुन्दरी मे वालिख्यात्मानं विनोदयति। त्वं तु मम न प्रत्ययसे। अहमेवाविमृश्यकारणीति किं भण्यते।

हिन्दी-अनुवाद- (चित्र देखकर, अलग होकर) हारलता देखो, कर्णसुन्दरी का ही चित्र बनाकर मन को बहला रहे हैं। तुम तो मेरा विश्वास नहीं करती हो । मुझे ही बिना विचारे काम करने वाली क्यों कहा जाता है?

हारलता- तथैव

हिन्दी-अनुवाद- वैसा ही है।

देवी- (प्रकाशम्।) अज्जउत्त, इदं ण अणविणोदणं मए आगदुअ विनि वट्टिदं जेव्व। संपदं पेक्खिदव्वम्। (इति सावेगमुत्तिष्ठति।)

सं० छाया- आर्यपुत्र, एतन्नयन विनोदनं मया गत्य विनिवर्तितमेव। साम्प्रतं प्रेक्षितव्यम्।

हिन्दी-अनुवाद- *(प्रकट रूप से) आर्यपुत्र! यह नेत्रों का विनोद मैंने ही आकर बाधित किया। अब देखिए।*

(यह कह कर तेजी से उठ जाती है।)

राजा- अलमन्यथा संभावितेन। *(इति वारयति।)*

(देव्याक्षिप्य हारलतया सह निष्क्रान्ता।)

हिन्दी-अनुवाद- अन्य प्रकार की संभावना करना व्यर्थ है *(यह कह कर रानी को रोकता है।)*

(देवी झटक कर हारलता के साथ चली जाती हैं।)

राजा- एहि तावत्। देवी प्रसादनाय प्रयतावहे।

(इति निष्कान्ताः सर्वे।

इति प्रथमोऽङ्कः

हिन्दी-अनुवाद- राजा-आओ तो । देवी को प्रसन्न करने के लिए प्रयत्न करें।

(यह कह कर सब चले गए)

"पहला अङ्क समाप्त"

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति सुप्तोत्थितो विदूषकः)

विदूषकः- *(अङ्गुलीभ्यामक्षिणी मृजन्)* अज्ज पिअवअस्सेण दिग्धरोसं देविं पसादिअ मे किं पि समादिट्ठम्। तदादिट्ठत्थदूणो मञ्जिट्ठारूणेण अरूणसार हिमण्डलेण सान्दअन्तेणं रअणिं जागविओम्हि। ण सक्कणोमि सअणिज्जादो णिद्दाए बलामोडिमीलिज्जन्त दिट्ठी उट्ठिदुम्। पिअवअस्सचलण वडण संतुट्ठदेवी पसादलद्धेहिं मोएदहिं पुट्ठभुइट्ठंचिट्ठदि मेउअरम्। णि हुअं अववर अअन्तरे सुवामि। *(स्मृतिमभिनीयं)* अहवा कहं सुविअदि। जं पि अवअस्सेण तीए विज्जाहरकण्ण आए पउत्तिं जाणिदुं किं सा वि वअस्ससाणु राआण वेत्ति आणत्तम्हि। ता जाव गदुअ काए वि अन्तेउरविलासिणीए सआसादो अण्णापदेसेण जाणिस्सम्। कहं उवलतरङ्ग तरङ्गवदित्तिणामहेआ इदो ज्जेव्व आअच्छदि। भोदु। एताए जेव्व मुहादो जाणिस्सम्। (पुनरवलोक्य) मं पेक्खिअ एदाए किं पि अपच्छादिदम्। *(निरूप्य सशिरः कम्पम्।)* अत्थि एत्थ वडे जक्खो। भोदु। संभाविअ जाणामि। *(इति तथा करोति।)*

सं० छाया- अद्य प्रियवयस्येन दीर्घरोषां देवीं प्रसाद्य मे किमपि समादिष्टम्। तदादिष्टार्थदूनो मञ्जिष्ठारूणेनारूण सारथिमण्डलेन सान्द्रायमाणेन रजनिं जागरितोऽस्मि। नशक्नोमिं शयनीया न्निद्रया हठान्मील दृष्टि रुत्थातुम्। प्रियवयस्य चरण-पतन संतुष्ट देवी प्रसाद लब्धै र्मोदकैः पुष्टभूयिष्ठं तिष्ठति मे उदरम्। निभृतमपवरकान्तरे स्वपिमि। अथवा कथं सुप्यते। यत्प्रियवयस्येन तस्या विद्याधर कन्यकायाः प्रवृत्तिं ज्ञातुं किं सापि वयस्यसानुरागा न वेत्याज्ञप्तोऽस्मि। तद्यावद्गत्वा कस्याअप्यन्तः पुरविलासिन्याः सकाशादन्यापदेशेन ज्ञास्यामि। कथमुत्पलतरङ्गा तरङ्ग वतीतिनाम-धेया इत एवागच्छति। भवतु। अस्या एव मुखाज्ज्ञास्यामि। मां

प्रेक्ष्यैतया किमप्यपच्छादितम्। अस्त्यत्र वटे यक्षः। भवतु। संभाव्य जानामि।

हिन्दी-अनुवाद- विदूषक- (अँगुलियों से आँखों को मलते हुए।) आज प्रियमित्र ने लम्बे समय तक क्रोध करने वाली देवी को प्रसन्न करके मुझे भी कोई आदेश दिया है। इसलिए अभीष्ट प्रयोजन से पीड़ित मैं मजीठ के समान लाल एवं सघन होते हुए सारथि अरुण के मण्डल के कारण रात भर जागता रहा हूँ (इसलिए) निद्रा से हठात् बन्द होती हुई दृष्टिवाला मैं शय्या से उठने के लिए असमर्थ हूँ। प्रिय मित्र के पैरों पर गिरने से सन्तुष्ट देवी की कृपा से पाये हुए लड्डुओं से मेरा पेट बहुत भरा हुआ है। (इसलिए) दूसरे शयनागार में चुपचाप सो जाता हूँ। (स्मरण करने का अभिनय करके) अथवा कैसे सोऊँ? क्योंकि प्रियमित्र ने उस विद्याधर कन्या का हालचाल जानने के लिए कि वह भी मित्र के प्रति अनुराग रखती है या नहीं यह मुझे आदेश दिया है इसलिए जाकर अन्तःपुर में रहने वाली किसी भी स्त्री से दूसरे के बहाने जानूँगा। कमल के समान तरङ्ग वाली तरङ्गवती नाम की परिचारिका इधर ही आ रही है। अच्छा! इसी के मुख से जानूँगा (पुनः देखकर) मुझे देखकर इसने कुछ छिपा लिया है। (अच्छी तरह देखकर सिर हिलाते हुए) इस वटवृक्ष पर यक्ष रहता है। अच्छा! संभावित करके जान लेता हूँ। (वैसा करता है।)

(ततः प्रविशति तरङ्गवती।)

तरङ्गवती- (अग्रतोऽवलोक्य।) एस दुट्ठवडू पेक्खिस्सदि एदं सिसिरोवआरम्। ता अण्णदो गच्छामि। (इति तथा गच्छति।)

सं० छाया- एष दुष्टवटुः प्रेक्षिप्यत एतच्छिशिरोपचारम्। तदन्यतो गच्छामि।

हिन्दी-अनुवाद- (तदनन्तर तरंगवती प्रवेश करती है।)

तरङ्गवती- (आगे देखकर) यह दुष्ट ब्राह्मण बालक इस ठंढ़ाई के उपचार को देख लेगा। इसलिए दूसरी ओर जाती हूँ। (यह कह कर दूसरी ओर जाती है।)

विदूषक- (सत्वरमुपसृत्य।) भोदि, कीस अण्णदो गच्छीअदि। अहं तुह ससिलेहाए विअ मग्गं पलोएमि। तुमं राहुंवमं पलिहलसि। किं ण्णेदम्।

सं० छाया- भवति, कुतोऽन्यतो गम्यते। अहं तव शशिलेखाया इव मार्गं प्रलोकयामि। त्वं राहुमिव मां परिहरसि। किं न्वेतत्।

हिन्दी-अनुवाद- (शीघ्रता से पास जाकर।) शुभे! क्यों दूसरी ओर जा रही हो? मैं चाँदनी की तरह तुम्हारी बाट जोह रहा हूँ। तुम राहु की तरह मुझे छोड़ रही हो। ऐसा क्यों?

तरङ्गवती- अज्ज, कज्जन्तरपज्जा उलहि अ अत्तेण ण लक्खिदोसि। पसीददु भवं।

सं० छाया- आर्य, कार्यान्तर पर्याकुल हृदयत्वेन न लक्षितोऽसि। प्रसीदतु भवान्।

हिन्दी-अनुवाद- आर्य, दूसरे कार्य से व्याकुलहृदय होने के कारण आपको नहीं देखा। आप प्रसन्न हों।

विदूषक- अह केण वावारेण तत्तभोदी कण्णसुन्दरी वट्टदि।

सं० छाया- अथ केन व्यापारेण तत्र भवती कर्णसुन्दरी वर्तते।

हिन्दी-अनुवाद- अच्छा, माननीया कर्णसुन्दरी क्या कार्य करती हैं?

तरङ्गवती- णिअवावारे व्व सा पिअसही।

सं० छाया- निज व्यापारैव सा प्रिय सखी।

हिन्दी-अनुवाद- वह प्रिय सखी अपना ही कार्य करती है।

विदूषक- को उण णिअवावरो।

सं० छाया- कः पुनर्निज व्यापारः ?

हिन्दी-अनुवाद- अपना कार्य क्या है?

तरङ्गवती- देवी ए सआसे सिक्खदि लक्खणाणा भणुसीलिणानि, अमअणादो बहुविहाओ लीलाओ वि।

सं० छाया- देव्याः सकाशे शिक्षते लक्षणानामनुशीलनानि, अमदना बहुविधा लीलाअपि।

हिन्दी-अनुवाद- वह देवी के पास लक्षणों का अनुशीलन सीखती हैं और काम रहित अनेक प्रकार की लीलायें भी।

विदूषक- (विहस्य) अवरो को वि वावारो त्ति सुणीअदि।

सं० छाया- अपरः कोऽपि व्यापार इति श्रूयते।

हिन्दी-अनुवाद- (हँस कर) दूसरा कोई और कार्य, यह सुना जाता है।

तरङ्गवती- (साशङ्कम्।) क इत्ति णिवेदेदु भवं।

सं० छाया- क इति निवेदयतु भवान्।

हिन्दी-अनुवाद- (शंकापूर्वक) कौन कार्य यह आप बताएँ?

विदूषक- जत्थ एदाणं विणिओओ। (इत्यस्या अंशुकान्तरात्कदलीपत्राणि मृणालिकाश्च लीलया गृह्णाति।)

सं० छाया- यत्रैतेषां विनियोगः।

हिन्दी-अनुवाद- जहाँ इन चीजों का उपयोंग होता है। (यह कह कर उसके वस्त्र के भीतर से कदली पत्र और कमल की जड़ लीलापूर्वक ले लेता है।)

तरङ्गवती- अज्ज, ण किं पि सङ्किदव्वम्। एदेहिं मम किं पि कज्जं अत्थि।

सं० छाया- आर्य, न किमपि शङ्कितव्यम्। एतैर्मम किमपि कार्यमस्ति।

हिन्दी-अनुवाद- आर्य कुछ भी शंका नहीं करनी चाहिए इनसे मेरा कोई कार्य है।

विदूषक- अविस्सासिणि, अलं अवलावेण। णणु पिअवअस्सेण पउत्तिं जाणिदुं पेसिदोम्हि। ता उज्जुअं कहेसु।

सं० छाया- अविश्वासिनी, अलमपलापेन। ननु प्रियवयस्येन प्रवृत्तिं ज्ञातुं प्रेषितोऽस्मि। तदृजुकं कथय।

हिन्दी-अनुवाद- अविश्वसनीये! अपलाप करना (छिपाना) व्यर्थ है। प्रिय मित्र ने वृत्तान्त जानने के लिए मुझे भेजा है इसलिए सीधे से बता दो।

तरङ्गवती- अज्ज, रक्खिदव्वं रहस्सभ्।

सं० छाया- आर्य रक्षितव्यं रहस्यम्।

हिन्दी-अनुवाद- आर्य, रहस्य को बचाना।

(इति संस्कृतमाश्रित्य।)

यत्ताराररमणोऽपि निर्वृतिपदं नास्याश्वलच्चक्षुषो-
र्यद्गात्रं शतपत्रपत्रशयनेऽप्युत्फालमुद्वेल्लति।

शीतं यच्च कुचस्थलीमलयजं धूलीकदम्बायते
किं वान्यत्तदनङ्गमङ्गलमयी भङ्गी कुरङ्गी दृशः।।१।।

(इत्युक्त्वापसरति।)

(संस्कृत भाषा का आश्रय लेकर।)

हिन्दी-अनुवाद- जो चन्द्रमा भी उसकी आँखों के लिए शान्तिस्थान नहीं हो रहा है, जो शरीर, कमलपत्रों की शय्या पर भी छटपटाहट की सीमा का अतिक्रमण करता है, जो कुचप्रान्त में लेपा गया शीतल श्रीखण्ड चन्दन धूलसमूह बन जाता है, वह और क्या है, मृगनयनी की कामजन्य मङ्गलमयी भङ्गिमा है।।१।।

(यह कह कर चलने लगती है।)

विदूषक- *(स परितोषम्।)* भोदि, संणिओअं असुण्णं करेसु। अहं पि पिअवअस्सं वड्ढावेमि।

सं० छाया- भवति, स्वनियोगमशून्यं कुरू। अहमपि प्रिय वयस्यं वर्धयामि।

हिन्दी-अनुवाद- *(सन्तोष के साथ)* शुभे! अपने कर्त्तव्य को पूरा करो। मैं भी प्रिय मित्र को बधाई देता हूँ।

(यह कह कर दोनों चले जाते हैं।)

प्रवेशकः

(ततः प्रविशति सोत्कण्ठो राजाविदूषकश्च।)

राजा- **धूमश्यामलि तेव तापनवशाच्चामी करस्यच्छवि**
श्चन्द्रो मुक्त इव श्रिया किसलया निर्धौतरागा इव।

निः सारेव धनुर्लता रतिपतेः सुप्तेव विश्वप्रभाः
तस्याः किं च पुरो विभान्ति कदलीस्तम्भाः सदम्भा इव।।२।।

हिन्दी-अनुवाद- *(तदनन्तर उत्कण्ठा से युक्त राजा और विदूषक का प्रवेश)*

उस सुन्दरी के आगे, तपाने के कारण सुवर्ण की कान्तिवाली जैसी, चन्द्रमा शोभाहीन जैसा नवपल्लव लालिमा रहित जैसे, कामदेव का धनुष निस्तत्व जैसा, संसार की प्रभा सोयी जैसी और केले के स्तम्भ दम्भी जैसे मालूम पड़ते हैं।।।२।।

अपि च,

मुग्धाक्ष्याः कति नेन्दवः समुदिता वक्त्रे स्फुरत्कान्तयो
विश्रान्तिः कियतां न लोचनयुगे नीलाम्बुजानां श्रियः।

निष्पन्नः कियता न विद्रुमरुचां सारेण बिम्बाधरः
पीताश्चारुभिरङ्ग कैश्च कति न स्निग्धा मधूकत्विषः।।३।।

हिन्दी-अनुवाद- और भी,

सुनयना के मुख पर चमकती हुई कान्तियाँ (क्या) कुछ एकत्रित चन्द्रमा (जैसी) नहीं हैं? (अर्थात् अवश्य हैं।) दोनों नेत्रों में (क्या) कुछ नील कमलों की शोभा का विश्राम नहीं हो जाता है? (अर्थात् अवश्य होता है।) बिम्बाफल के समान अधर क्या मूँगों के कुछ सार भाग से बना हुआ नहीं है? (अर्थात् अवश्य है।) और सुन्दर अंगों ने क्या कुछ स्निग्ध महुए के फूलों की कान्तियों को पी नहीं लिया है? (अर्थात् अवश्य पिया है।)।।३।।

(अनुसंधाय।)

स्फुरल्लीलामालं किमपि रसयोगानमृगदृशः
क्षणं दीर्घापाङ्ग प्रणयि यदभून्नेत्रयुगलम्।

अहो हृज्जन्मान्तः स्फुरति बत मे शल्यमिव त-
द्यदावेगे मोहः परमयमविश्राम विषयः।।४।।

(अनुसंधान करके।)

हिन्दी-अनुवाद- *मृगनयनी के दोनों नेत्र, रस (श्रृंगारी भावना।) के योग से फड़कती हुई लीलाओं की श्रेणी से युक्त होकर क्षणभर के लिए लम्बे नेत्र-प्रान्तों के प्रेमी बन गए थे (अर्थात् कटाक्ष किया था।) वह, खेद है कि कील की तरह मेरे हृदय में घुस कर फड़क रहा है, जिसके आवेग में महामोह अविश्राम का विषय हो गया है। (अर्थात् हट ही नहीं रहा है।)।।४।।*

अहो, किमपि कमनीये वयसि वर्तते सुमध्यमा। तथाहि।

आभोगः कृत एव किं तु न गतिस्त्यक्ता कुचाभ्यां द्वयी
भ्रूलास्यैरवकीर्णमेव मिलितं नो किं तु सम्यग्दृशोः।

लीलाभिः परिरब्धमेव गमनं तन्व्या नितम्बोद्गम
प्राग्भारेण न किं तु मन्थर पदंन्यासस्तदा सूत्रितः।।५।।

सखे, अपि सत्यं तरङ्गवत्या वचः।

हिन्दी-अनुवाद- अहा, सुन्दरी अनिर्वचनीय रमणीय वय में विद्यमान है। क्यों कि -(उसके) कुचों ने विस्तार तो पा लिया किन्तु युगलगति (उठने और फैलने) को नहीं छोड़ा है। भौंहों का नृत्य बिखरा हुआ ही होता है किन्तु दोनों आँखों से मिलित रूप में नही । सुन्दरी की चाल लीलाओं से ही आलिंगित होती है न कि उठे हुए नितम्ब के भार से लोच लेकर किन्तु उस समय मन्द मन्द चरणक्षेप (पैर उठाना और रखना) क्रमबद्ध होता है।।५।।

मित्र! क्या तरङ्गवती की बात सत्य है।

विदूषक- एदे क्खु मअणमअतिण्हा विप्पल द्धाकामिणो उम्मत्ता मह पडिहान्ति। जं पच्चक्खे वि विप्पदिवन्तिं कुणन्ति। जद्रि सब्बधा ण पत्तिज्जसि ता अकरणिज्जं पि करेम्मि। बम्हणीए चलणे हिं सवामि।

सं० छाया- एते खलु मदनमृगतृष्णाविप्रलब्धाः कामिन उन्मत्ता मम प्रतिभान्ति। यत्प्रत्यक्षेऽपि विप्रतिपत्तिं कुर्वन्ति। यदि सर्वथा न प्रत्ययसे तद करणीयमपि करोमि। ब्राह्मण्याश्चरणाभ्यां शपामि।

हिन्दी-अनुवाद- ये कन्दर्परूप मृगतृष्णा द्वारा ठगे गए कामी पुरूष मुझे उन्मत्त प्रतीत होते हैं जो प्रत्यक्ष वस्तु में भी विरोध करते हैं। यदि तुम सर्वथा विश्वास नहीं करते हो तो मैं अकरणीय कार्य भी करता हूँ- ब्राह्मणी के चरणों की शपथ खाता हूँ।

राजा- हृदय, दिष्ट्या वर्धसे।

यस्यां रक्तं किल कलयसि क्लान्तिमत्यर्थमेवं
नूनं वृन्तादिव सरसिजं मज्जदन्तर्हिमाम्भः।

कृत्वा सद्यः श्रवण युगले लोल ताटङ्करिक्ते
सापि स्वैरं विशिखखुरली कल्पिता मन्मथेन।।६।।

हिन्दी-अनुवाद- *हृदय ! भाग्य से बढ़ रहे हो ।*

जिस (नायिका) में अनुरक्त होकर तू इस प्रकार अत्यन्त क्लान्ति (थकावट) का अनुभव कर रहा है, वह भी निश्चित रूप से शीतल जल में डूबते-उराते हुए कमल को मानों डंठल से लेकर चंचल बाली से खाली दोनों कानों में सद्यः पहन कर कन्दर्प के द्वारा बाणाभ्यास की भूमि बना ली गयी है।।६।।

(स्फुरल्लीला २/४ इत्यादि पठति।)

विदूषक- *(विहस्य भो, किं पि पुच्छामि।)*

सं० छाया- भोः, किमपि पृच्छामि।

हिन्दी-अनुवाद- *(स्फुरल्लीला इत्यादि श्लोक पढ़ता है।)*

(हँसकर) अजी! मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।

राजा- किं न पृच्छसि।

हिन्दी-अनुवाद- *क्यों नही पूछते हो?*

विदूषक- सिणिद्धमुद्धपहाउडणमणुल्लसणमणोहरं हर सुफुल्लकवोल मण्डलं समुह पलोइदं अवगणिअ कण्णन्तिकगामिणिं वङ्कं जेव्व दिट्ठिं कुविदाणं विअ कामिणीणं कामिणो कीस पसंसन्ति।

सं० छाया- *स्निग्धमुग्ध मनोहरं हर्षोत्फुल्लकपोलमण्डलं संमुखप्रलोकितभवगणय्य कर्णान्तिकगामिनीं वक्रामेव दृष्टिं कुपितानामिव कामिनीनां कामिनः कुतः प्रशंसन्ति।*

हिन्दी-अनुवाद- *कामी लोग कुपित हुई जैसी कामिनियोंके चिकने, भोले, सुन्दर हर्षसे खिले हुए एवं सामने अवलोकित कपोल स्थल की अवहेलना करके कान तक खींच कर पहुँची हुई तिरछी दृष्टि की ही क्यों प्रशंसा करते हैं?*

राजा- *अविदग्धोऽसि। पश्य।*

हिन्दी-अनुवाद- *तुम मूर्ख हो। देखो।*

दीर्घापाङ्गतरङ्गितेन विगलन्नीरं विलोले क्षणा
यत्पश्यन्त्य वतंसनालनलिनच्छायामुषा चक्षुषा।

तुल्यं वाधिकमन्यदेव मदनस्यास्त्रं त्रिलोकी जयि
व्यापारोऽस्य न यत्र तत्र किमपि प्रेम्णो हि तल्लक्षणम्।।७।।

हिन्दी-अनुवाद- *चंचल नेत्रों वाली स्त्रियाँ लम्बी आँख की कोरों से लहराती हुई तथा आभूषण रूप नालवाले कमल की कान्ति को चुराने या लजाने वाली आँखों से आँसू बहाती हुई(आँखों से) देखती हैं। वह कामदेव का दूसरा ही त्रैलोक्यविजयी अस्त्र के तुल्य या अधिक (प्रभावशाली अस्त्र) है। इसका प्रयोग यत्र तत्र नहीं किया जाता है। वह प्रेम का अनिर्वचनीय लक्षण है।।७।।*

विदूषक- *भो, अण्णं भणामि। जाए कारणादो महन्तेण दुःखेण सअलं जेव्व जामिणिं देवी अब्भत्थिदा सा किं त्ति पुणो वि अणुसंधी अदि। जदितीए कज्जं ताकि त्ति देवी पीडन्ती अणुणीअदि। अह देवीए कज्जं तां कि त्ति सा अणुसंधी अदि त्ति।*

सं० छाया- *भोः, अन्यद्भणामि। यस्याः कारणान्महता दुःखेन सकलामेव यामिनीं देव्यभ्यर्थिता सा किमिति पुनरप्यनुसंधीयते। यदि तथा कार्यं तत्किमिति देवी पीड्यमानानुनीयते। अथ देव्या कार्यं तत्किमिति सानुसंधीयत इति।*

हिन्दी-अनुवाद- *अजी, दूसरी बात कहता हूँ । जिसके कारण महान दुःख से सारी रात देवी की अभ्यर्थना की उसकी खोज पुनः क्यों की जाय? यदि उसकी आवश्यकता है तो पीड़ित होती हुई देवी का अनुनय (मनावन) क्यों किया जाय ? और यदि देवी की आवश्यकता है तो उसकी खोज क्यों की जाय?*

राजा- *अयि सखे, श्रुणु।*

जनिमुपगता विश्वप्रख्यातनाम्नि कुले पुनः
प्रणय विशदा देवी भोक्तुं मया न हि पार्यते।

कथमवितथश्लाघ्यैरङ्गैरसावपि मुच्यतां
रचित कवचः पक्षे यस्याः स्थितः कुसुमायुधः।।८।।

तत्कथमयं विरहदाहो मया गमयितव्यः।

हिन्दी-अनुवाद- *हे मित्र सुनो*

विश्वविख्यात कुल में जन्म लेने वाली और प्रेम करने में पारंगत महारानी को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ? फिर उस रमणी को भी कैसे छोडूँ जो वस्तुतः प्रशंसनीय अंगों से युक्त है और जिसके पक्ष में कवच की रचना किए हुए कामदेव विद्यमान है।।८।।

तो मैं विरह के ताप को कैसे झेलूँ?

विदूषक- *सब्वधा पिअवअस्सोअसुहिदो त्ति करूणं उप्पाइअ सत्थिवा अण पुव्वअं अणुणीअ सा समप्पीअदुत्ति देविं पुच्छेमि।*

सं० छाया- *सर्वथा प्रियवयस्योऽसुखीत इति करूणामुत्पाद्य स्वस्तिवाचनपूर्वक मनुनीय सा समर्प्यतामिति देवीं पृच्छामि।*

हिन्दी-अनुवाद- *प्रिय मित्र सब प्रकार से सुखरहित हो गए हैं। यह (कह कर) करुणा उत्पन्न करके स्वस्तिवाचन पूर्वक (फूलों द्वारा आशीर्वाद देने की विधि) अनुनय-विनय करके 'वह समर्पित कर दीजिए' यह मैं देवी से पूछता हूँ।*

राजा- *मूर्ख,*

नैवं कथंचन कृतानुनयापि देवी
मन्येत मन्युकलुषा मयि केवलं स्यात्।

स्थातुं सुशक्यमनले पतितुं कृपाण-
धारासु वा न तु जनं दयितं विमोक्तुम्।।६।।

तत्क्वायमात्मा विनोदयितव्यः।

हिन्दी-अनुवाद- अरे मूर्ख,

इस प्रकार अनुनय-विनय करने पर भी देवी कथमपि नहीं मानेंगी। केवल मुझ पर क्रोध से मलिन हो जायेंगी। अग्नि में ठहरना या तलवारों की धारों पर गिरना आसान है किन्तु प्रियजन को त्यागना आसान नहीं है।

तो इस मन को कहाँ बहलाया जाय ?

विदूषक- भो, तत्थ ज्जेव्व उज्जाणे गच्छीअदु। तत्थ तरङ्गसालब्भन्तरे चित्त गदं पलोअन्तोसुहं पाविहिसि।

सं० छाया- भोः, तत्रैवोद्याने गम्यताम्। तत्र तरङ्ग शालाभ्यन्तरे चित्रगतां प्रलोकयन्सुखं प्राप्स्यसि।

हिन्दी-अनुवाद- अजी, उस उद्यान में जाइए । वहाँ तरङ्गशाला के भीतर चित्र में अवस्थित (प्रिया) को देखते हुए आप सुख प्राप्त करेंगे।

राजा- सखे, युक्तयुक्तम्। तदुपदिश पन्थानम्।

हिन्दी-अनुवाद- मित्र! तुमने युक्तियुक्त बात कही है। तो मार्ग बतलाओ।

विदूषक- इदो इदो। (इति परिक्रामति।) एसा तरङ्गसाला अलंकरीअदु।

सं० छाया- इत इतः। एषा तरङ्गशालालंक्रियताम्।

हिन्दी-अनुवाद- इधर से, इधर से (यह कर घूमता है।) यह तरंगशाला है, इसे अलंकृत करें।

(उभौ तथा कुरूतः।)

(दोनों वैसा करते हैं।)

विदूषक- (सर्वतोऽवलोक्य।) भो, कहिं सा सामलङ्गी अणङ्गदेवदा आलिहिदा। अह वा अहं चम्मचक्खू ण पेक्खामि।

सं० छाया- *भोः कुत्र सा श्यामलाङ्ग्यनङ्गदेवता लिखिता। अथ वाहं चर्मचक्षुर्न पश्यामि।*

हिन्दी-अनुवाद- *(सब ओर देखकर) अजी, कहाँ वह साँवले अंगों वाली कामदेवता लिखी गयी है। अथवा मैं चमड़े की आँखों से नहीं देख पा रहा हूँ।*

राजा- *(निःश्वस्य।) कथमुत्प्रोञ्छितं तदनङ्ग शस्त्रम्। अहो निर्दया देवी।*

राजा- *(लम्बी साँस लेकर) कन्दर्प (कामदेव) के शस्त्र को कैसे पोंछ (निष्क्रिय कर दिया जाय/मिटा) दिया जाय ? हाय, देवी बहुत निर्दया (निर्मम) हैं।*

सिद्ध क्षेत्रमिवाङ्ग नाकुल गुरोर्लावण्यसारोच्चय
श्री संकेत इव त्रिलोकनयन प्रीतेरिवैको निधिः।

धातुश्चन्द्र सहस्रसंग्रह इव द्रष्टुं तदेणी दृशो
वक्त्रं चित्रनिविष्टमप्य सुलभं कोऽयं विरूद्धो विधिः।।१०।।

हिन्दी-अनुवाद- *स्त्री समूह के उपदेशक के सिद्धपीठ के समान सौन्दर्य तत्व की राशि के शोभा-स्थान के समान तीनों लोक के नेत्रों के आनन्द की एक मात्र निधि के समान और विधाता के सहस्र चन्द्रों के संग्रह के समान उस मृगनयनी का मुख चित्रगत भी देखने को सुलभ नहीं हो रहा है, यह कैसा विरुद्ध विधाता है। अर्थात् यह भाग्य के विपरीत होने का दुष्परिणाम है।।१०।।*

(विचिन्त्य) विद्वांस्ततो लिखितुमिन्दुमुखीं विदग्धः
कोऽन्यो विना कुसुमचापमनल्प शिल्पः।

नूनं तदा तदनुबन्धिभिरिन्द्र जाल-
मुन्मीलितं किमपि मे पुरतो विकल्पैः।।११।।

(इति शोकं नाटयति।)

हिन्दी-अनुवाद-*(सोच कर)*

तब किसी सूक्ष्मदर्शी कलाकार ने चन्द्रमुखी का चित्र बनाया होगा। कामदेव के बिना दूसरा कौन (ऐसा) महाशिल्पी है? निश्चित ही उस समय उससे सम्बन्धित लोगों ने मेरे समक्ष कोई इन्द्रजाल (जादू) विकल्पों कूटयुक्तियोंसे उद्घाटित किया था ।।११।।

(यह कह कर शोक का अभिनय करता है।)

विदूषक- भो, किं एत्थ सुण्ण देउले। एहि। लीलावणब्मन्तरे परिब्यमामो। कदा वि कथं वि कुसुमाओ उंच्चिणन्ती लदाओ सिञ्चन्ती वा सरसी जलम्भिण्हाणविधिं करन्ती वा सा हुविस्सदि।

सं० छाया- भोः, किमत्र शून्यदेव कुले। एहि। लीला वनाभ्यन्तरे परिभ्रमावः। कदापि कथमपि कुसुमान्युच्चिन्वन्ती लताः सिञ्चन्ती वा सरसीजले स्नानविधिं कुर्वती वा सा भविष्यति।

हिन्दी-अनुवाद- अजी, यहाँ शून्य देवगृह में क्या (करना है?) आओ लीलावन में भ्रमण करें । कदाचित किसी तरह फूलों को चुनती हुई, लताओं को सींचती हुई या सरोवर में स्नान करती हुई वह होगी।

राजा- कुत एवं विधा नो भाग्यसंपदः। तथापि पश्चात्तापव्यपनयनाय तदपि विधीयताम्।

हिन्दी-अनुवाद- कहाँ ऐसी हमारी भाग्य सम्पत्तियाँ हैं? तो भी पश्चात्ताप मिटाने के लिए वह भी करें।

(इति तथा कुरूतः।)

हिन्दी-अनुवाद- *(यह कह कर दोनों वैसा करते हैं।)*

विदूषक- *(अग्रतो विलोक्य।)* पेक्ख, केलिकमलिणी सणुम्मि। विच्छोडन्तो

णिअमुहगदं चक्कवाआण चक्कं देन्तो णिद्दारसमसमये सव्वदो पङ्कआणम्।

(अग्रतोऽवलोक्य।)

तारं तीरप्फुरिद किरणो लोअणानन्दवल्ली
कन्दो चन्दो रचअदि जले मज्जणुम्मज्जणा ईं।।१२।।

सं० छाया- *पश्य केलिकमलिनी*

वियोजयन्निज मुखगतं चक्रवाकाणां चक्रं
ददन्निद्रारसम समये सर्वतः पङ्क जानाम्।

तारं तीर स्फुरित किरणो लोचनानन्दवल्ली
कन्दश्चन्द्रो रचयति जले मज्जनोन्मज्जनानि।।१२।।

हिन्दी-अनुवाद- *(आगे देखकर)* देखो

अपने मुँह में आये हुए चकवा पक्षियों के समूह को (पत्नियों से) अलग करते हुए और कमलों को असमय में निद्रारस देते हुए (अर्थात् मुकुलित करते हुए) (सामने देखकर) अत्यन्त चमकीले किरणों वाला एवं नयनानन्दलता का कन्दरूपी चन्द्रमा जल में ऊबडूब कर रहा है।१२।।

राजा- *(विलोक्य।)*

परं मैत्रीपात्रं त्रिभुवनजिगीषोः स्मृतिभुवः
स एवायं यूनामविनय कथोन्मुद्रण गुरूः।

(विचिन्त्य) गतः किं वा दैवाद्धत बत कलङ्कोऽस्य नियतं
सुधामुग्धै र्धौतः कमल सरसी वीचिनिचयैः।।१३।।

हिन्दी-अनुवाद- *(देखकर) तीनों लोक को जीतने के इच्छुक कामदेव का श्रेष्ठ मित्र वही यह चन्द्रमा है जो युवकों की उच्छृंखल बातों को*

खोलने या कहने में प्रेरक है।

(सोचकर)

अथवा हर्ष का विषय है कि संयोग से इस (चन्द्रमा) का कलंक (धब्बा) अमृत के समान सुन्दर कमल सरोवर की तंरगों के समूह से धुल कर निश्चय ही दूर हो गया है। ।।१३।।

(सोत्प्रेक्षम्।)

तस्याः कुरङ्गकदृशो युगपन्मुखेन
दोषाकरश्च कमलानि च निर्जितानि।

एतानि शाश्वति कमप्य पहाय वैरं
स्वैरं तदत्र रचयन्ति विधेय चिन्ताम्।।१४।।

हिन्दी-अनुवाद- (संभावना के साथ)

उस मृगनयनी के मुख ने एक साथ चन्द्रमा और कमलों को जीत लिया है और वे(चन्द्रमा तथा कमल) भी यहाँ अपने उस नैसर्गिक विरोध को त्यागकर स्वेच्छा से कर्त्तव्य चिन्तन करते हैं। अर्थात् नायिका के मुख को अलंकृत करते हैं।।१४।।

विदूषक- **रोहिणी वअणालिङ्गणणिब्भर संकन्त परिमलुग्गारम्।**
ण मुअन्ति कुमुअबन्धव बिम्बं परिलम्बिआ भमरा।।१५।।

सं० छाया- **रोहिणी वदनालिङ्गन निर्भर संक्रान्त परिमलोद्वारं कुमुदबान्धव बिम्बं परिलम्बिताः भ्रमराः न मुञ्चन्ति।।१५।।**

हिन्दी-अनुवाद- रोहिणी के मुख का गाढ़ालिंगन करने के कारण क्षरित परिमल (सुबास) से संक्रान्त (ग्रस्त) चन्द्रमा के बिम्ब को मँडराते हुए भौंरे नहीं छोड़ रहे हैं।।१५।।

राजा- (निपुणं निरूप्य। सहर्षम्।)

सखे नायं खेलंस्तिलकयति चन्द्रः कुमुदिनी
मदः कंदर्पाज्ञास्फुरण गुरूवक्रं मृगदृशः।

कुलं रोलम्बानामिदमपि न लग्नं परिमला
दयं वेणीदण्डः शिखिन इव बर्हस्तरलितः।।१६।।

हिन्दी-अनुवाद- *(अच्छी तरह देखकर, हर्ष के साथ।) मित्र! यह खेलता हुआ चन्द्रमा कुमुदिनी को अलंकृत नहीं कर रहा है। यह मृगनयनी का, कन्दर्प की आज्ञा से फड़कता हुआ श्रेष्ठ मुख है। यह भी परिमल से सुवासित भौंरों का समूह नहीं है। यह मयूर के चंचल पिच्छ के समान वेणीदण्ड है।।१६।।*

अपि च।

आमात्य मर्त्य तरूपत्र सगोत्रपाणिः
सेयं मृगाङ्कवदना मदनास्त्रमत्र।

हेतोः कुतोऽपि कमला कमलान्तराला
न्निर्गत्य संयमवती पयसि स्थितेव।।१७।।

हिन्दी-अनुवाद- *और भी*

कल्पवृक्ष के पत्ते के समान हाथ वाली, चन्द्रमा के समान मुखवाली, और कामदेव के अस्त्र रूप यह वही (बाला) यहाँ सुशोभित हो रही है, मानो किसी भी कारण से संयमशील लक्ष्मी कमलों के बीच से निकल कर जल में अवस्थित है।।१७।।

विदूषक- *(सकौतुकम्।)*

ण वरकबरी गोरङ्गीए तरङ्गिद विब्भमा
भमरणिवहो आमोद्दाणं ससिम्मिण संगदो।

अवि कमिलिणी संकन्तेणं विलासहरेण सा
कण अकमलुक्किणा जादा मुहेण जलन्तरे।।१८।।

सं० छाया- न वरकबरी गौराङ्ग यास्तरङ्गित विभ्रमा
भ्रमरनिवह आमोदेन शशिनि न संगतः।

अपि कमलिनीसंक्रान्तेन विलासधरेण सा
कनककमलोत्कीर्णा जाता मुखेन जलान्तरे।।१८।।

हिन्दी-अनुवाद- *(कौतूहल के साथ) गोरे अंगो वाली (बाला) के उत्तम केशविन्यास लहरेदार चक्करवाला नहीं है। भ्रमर समूह हर्ष से चन्द्रमा में नहीं मिला है। अपितु जल के भीतर वह (बाला) कमलिनी के संसक्त एवं हावभाव से युक्त मुख के कारण सुवर्ण कमल से उत्कीर्ण (जड़ी हुई) प्रतीत होती है।।१८।।*

राजा-

पुष्पेषोरभिषेक योग्यमथवा भर्गाग्निमग्नात्मनः
प्रत्युज्जीवनमेतदम्बुजसरः कम्बुप्रसन्नच्छवि।

यत्त्वाम्रेडित शीतरश्मिं किरणस्यन्दो पमेनामुना
लावण्यामृतनिर्झरेण सुतनोर्यत्पात्रतां नीयते।।१६।।

हिन्दी-अनुवाद- *शंख के समान स्वच्छ कान्तिवाला यह कमल सरोवर कामदेव के स्नान करने योग्य अथवा शिव के ललाटाग्नि में मग्न शरीर को पुनर्जीवन देने वाला है, क्यों कि पुनरुक्त चन्द्रमा की किरणों के बहाव के समान तथा सौन्दर्य सुधा के झरना स्वरूप यह सरोवर सुन्दर शरीर का पात्र बना देता है।।१६।।*

अपि च

आश्चर्यं फलितं सरोरूहवने स्थित्वा चिरेण श्रियः
कान्तिः कान्तिसुधाद्रवेण सुतनोर्याता यदत्राधुना।

सान्द्र प्रेमवशी कृतस्य नियतं कौमोदकी लक्ष्मणः
साप्यङ्के गिरिजेव मन्मथरिपोः कामास्त्रमुत्स्त्रक्ष्यति।।२०।।

हिन्दी-अनुवाद- *और भी,*

यहाँ कमलवन में चिरकाल तक रहना लक्ष्मी को आश्चर्य रूप से फला । क्यों कि कान्तिरूपी अमृत के द्रव से सुन्दर तन को कान्ति प्राप्त हो गयी। अब प्रगाढ़ प्रेम से वश में किये गये गदाधर (विष्णु) के अंग में वे भी उसी तरह कामास्त्र का प्रयोग करेंगी जैसे पार्वती ने कन्दर्पशत्रु (शिव) के अंग में किया था ।।२०।।

विदूषक- *वणाणिलवेल्लिद विद्दुमकिसलअसरिच्छपप्फुरि दाहरोट्टी अङ्गुलिविवत्तण मणोहरकरपल्लवा नासग्गलग्ग अविस्सट्ठ कन्दोट्ट सलोणलोअणा जादा।*

सं० छाया- *वनानिलवेल्लित विद्रुम किसलयसदृशयप्रस्फुरिता धरोष्ठी अङ्गुलि विवर्तन मनोहर करपल्लवा नासाग्रलग्ना विस्पष्ट नीलोत्पलसलावण्य लोचना जाता।*

हिन्दी-अनुवाद- *(यह तो) वन के वायु से कम्पित विद्रुमलता (मूंगा) के नव पल्लव सदृश, ठिठुरते हुए या कम्पायमान अधरोष्ठ वाली अँगुलियों के फैलने से मनोहर करपल्लव (पल्लवसदृश हाथ) वाली, नासिका के अग्रभाग से लगी हुई (किञ्चित्) नीलकमल के समान सुन्दर आँखों वाली हो गयी।*

राजा- **स्फुरति यदयं दन्तज्योत्स्ना विलास धरोऽधरः**
करकिसलियौ मुद्रायोगाद्यदुच्चलिताङ्गुली।

मुकुलनविधिर्यन्नीलाब्जद्विषोरपि चक्षुषो
स्तदियमबला ध्यायत्यन्तः किमप्यधि दैवतम्।।२१।।

हिन्दी-अनुवाद- *जो यह दाँतों की चमक की शोभा धारण करने वाला अधर फड़क रहा है, जो नवपल्लव सदृश दोनों हाथ मुद्रा लगाने के कारण क्रियाशील उंगलियों वाली और जो नील कमल से द्वेष करने वाले, दोनों नेत्रों को संकुचित करने की क्रिया है, उससे*

(ऐसा लगता है कि) यह बाला अन्तः करण में किसी इष्टदेव का ध्यान कर रही है।।२१।।

विदूषक- *(सकौतुकम्।) भो, कीस एसा सुण्णंपुणोपुणो पाणिं णीरमज्झादो आअट्ठदि।*

सं० छाया- भोः, कस्मादेषा शून्यं पुनः पुनः पाणिं नीरमध्यादाकर्षति।

हिन्दी-अनुवाद- *(कौतुक के साथ) अजी, यह खाली हाथ को जल के बीच से क्यों बार बार खींच रही है?*

राजा- *(दृष्ट्वा।)*

सुतनुरनवलोक यन्त्युपान्ते स्थितमपि
काञ्चनकुम्भमम्बुपूर्णम्।

क्वचिदपि गतमानसा करेण स्पृशति
कुचप्रतिबिम्बमम्बुमध्ये।।२२।।

हिन्दी-अनुवाद- *(देख कर) कहीं मनचली या लग गए मनवाली सुन्दरी निकट में स्थित जलपूर्ण सुवर्ण घट को न देखती हुई हाथ से अपने कुच के प्रतिबिम्ब को जल के मध्य में छू रही है।।२२।।*

(सस्पृहम्।)

ताम्बूलावरणोज्झिते विकसितं रागेण बिम्बाधरे
मज्जत्कज्जलकालिकेन कलिता कापि च्छविश्चक्षुषा।

श्रीरन्यैव निरङ्गरागसुभगेऽप्यङ्गे कुरङ्गी दृशो
विश्राम्यत्वधुना धनुर्विजयते कं नाम नैव स्मरः।।२३।।

हिन्दी-अनुवाद- *(लिप्सा केसाथ) मृगनयनी के बिम्बाफल के समान ओठों में पान का आवरण न रहने पर भी लालिमा विकसित हो गयी है, नहाने से धुले हुए काजल की कालिमा वाली आँखों ने अपूर्व छवि*

धारण कर ली है। कामपीड़ा के राग से सुन्दर अंग में भी विलक्षण शोभा आ गयी है। इस समय काम का धनुष विश्राम कर रहा है। कामदेव किसको नहीं जीत लेता हैं? ।।२३।।

विदूषक- (विलोक्य) कहं एसा णिव्वत्तिदपव्व दीचरणसुस्सूसा इमादो कमल सरादो णिग्गदा रहसि सहीए सह लदागुम्मन्तरे-पविट्ठा।

सं० छाया- कथमेषा निर्वर्तित पार्वतीचरणशुश्रूषा स्मात्कमल सरसो निर्गता रहसि संख्यासह लतागुल्मान्तरे प्रविष्टा।

हिन्दी-अनुवाद- (देखकर) क्यों यह पार्वती के चरणों की परिचर्या करके इस कमलसरोवर से निकल कर सखी के साथ एकान्त में लता झाड़ी के भीतर प्रविष्ट हो गयी?

राजा- धूपांशुकेन शनकैः परिमृज्यमान
वेणीगुणा प्रणयपूर्वमुपेत्य सख्या।

मध्ये मधुद्रुमवनं वनदेवतेव
तन्वी विवक्षुरिव किञ्चिदिहोपविष्टा।।२४।।

(सहर्षम्) सखे, सुव्यक्तानि विरहचिह्नानि। तथाहि।

हिन्दी-अनुवाद- सखी स्नेहपूर्वक समीप जाकर धूप से सुवासित वस्त्र से उसके बालों की चोटी को धीरे धीरे पोंछने लगी। अनन्तर मधुद्रुमवन के बीच में वनदेवी की तरह बैठकर सुन्दरी कुछ कहने की इच्छुक हुई ।।२४।।

(हर्ष के साथ) मित्र ! (इसके) विरह के चिह्न तो सुस्पष्ट हैं। जैसे कि

दग्धासन्नलतावलीकिसलयः श्वासानिलानांचयो
वाष्पाम्भः स्रुतिरालवालकलनायोम्या तरूणामधः।

तापो निर्मृदितान्जिनीदलचयः काऽप्यङ्ककानां गुरू
दूर्वाकाण्ड विडम्बिपाण्डिमघनं किं चाननं सुभ्रुवः।।२५।।

हिन्दी-अनुवाद- श्वास वायुओं के समूह ने निकटस्थ लता पंक्तियों के पत्तों को जला दिया है, आँसुओं का प्रवाह वृक्षों के नीचे थाले को भर देने योग्य है, अंगों के किसी महान ताप ने कमलनियों के पत्तों के समूह को मुरझा दिया है और सुन्दरी के मुख ने दूब की पोरी (गाँठ) का उपहास करने वाली घनीपाण्डुता (पीतधवल रंग) को धारण कर लिया है।।२५।।

विदूषक- सुलक्खिदं पिअवअस्सेण।
णीसासाहिण वप्पहारवलिदा कामस्स णूणं सरा[1]।।२६।।

सं० छाया- सुलक्षितं प्रियवयस्येन।
निःश्वासाभिनव प्रहार वलिता कामस्य नूनं सरा[1]।।२६।।

हिन्दी-अनुवाद- प्रियमित्र ने ठीक ही कहा है।(नायिका के) निःश्वास रूप नये प्रहार से युक्त ये निश्चित ही काम के बाण हैं।

राजा- सखे, अस्यैव लतागहनस्य पश्चात्स्थित्वा श्रुणुवस्तावदस्या विश्रम्भभाषितानि।

हिन्दी-अनुवाद- मित्र! इसी लतावन के पीछे खड़े हो कर तब तक इसकी विश्वस्त या गुप्त बातें सुनें।

(इति तथा कुरुतः।)

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा नायिका सखी च।)

सखी- किं एव्वं रोदिअदि। एसा भअवदी भवाणीपणद जणवच्छला णिच्चिअं तुह इच्छं पूरइस्सदि।

सं० छाया- किमेव रुद्यते। एषा भगवती भवानी प्रणतजनवत्सला निश्चितं तवेच्छां पूरयिष्यति।

१- खण्डित।

हिन्दी अनुवाद- *(यह कह कर दोनों वैसा करते हैं।)*

(तदनन्तर जैसा बतलाया गया है, नायिका और सखी प्रवेश करती हैं)

हिन्दी-अनुवाद- *क्यों इस प्रकार रो रही हो? ये भक्तवत्सला भगवती दुर्गा निश्चित रूप से तुम्हारी इच्छा पूर्ण करेंगी।*

नायिका- को जाणादि कदा हुविस्सदि फलं चन्दद्धचूडामणि
प्पाणेसाचलणप्पसाद तरूणो भत्तीअ सित्तस्स वि।

मुज्झन्ती मअणाणलेन बहलं साहं हदासा पुणो
दाणिं जेव्व तधा चरामि परमं जंजंअवत्थन्तरम्।।२७।।

सं० छाया- को जानाति कदा भविष्यति फलं चन्द्रार्धचूडामणि
प्राणेशा चरण प्रसादतरोर्भक्त्या सिक्तस्यापि।

मुह्यन्ती मदनानलेन बहुलं साहं हताशा पुन
रिदानीमेव तत्र चरामि परमं यद्यदवस्थान्तरम्।।२७।।

हिन्दी-अनुवाद- *भक्ति से सींचे गये, शिवप्राणवल्लभा (दुर्गा)के चरणों की कृपा रूप सुन्दर वृक्ष का फल कब (प्राप्त) होगा, (यह) कौन जानता है? फिर कामाग्नि से बहुत मोह के वश होती हुई वह मैं अभी जो जो अत्यधिक विभिन्न दशा को प्राप्त हो रही हूँ, हताश हो गयी हूँ। ।।२७।।*

अवि च,

आसण्णो मृअलञ्छणो ण वअणो दुद्धेण धो एव्व सा
दिट्ठी सामलगोरमुद्धलडहं तं तस्स रूवं पडु।

झाणे झन्ति जधा परिप्फुरदि मे कच्चाइणीणो तधा
णो जाणे जदि जीव इस्सदिउ मा कण्णा विपण्णेत्ति माम्।।२८।।

अपि च,

सं० छाया- आसन्नोमृगलाञ्छनो न वदनं दुग्धेन धौतेवसां
दृष्टिः श्यामलगौर मुग्ध लटभं तत्तस्यरूपंपटु।

ध्याने झटिति यथा परिस्फुरति मे कात्याय न्यास्तथा।
नो जाने यदि जीवयिष्यत्युमा कन्या विपन्नेति माम्।।२८।।

हिन्दी-अनुवाद- और भी

(यह) समीपस्थ चन्द्रमा है। मुख नहीं है, वह दृष्टि, दूध से धुले हुए की तरह है। उनका क्रियाशील रूप श्यामल गौर भोला तथा सुन्दर रूप और कात्यायनी का स्वरूप मेरे ध्यान में शीघ्र चमकता है। नहीं जानती हूँ यदि दुर्गा (माता) मुझ विपन्ना कन्या को जीवित करेंगी।।२८।।

सखी- *णं तस्सिं पि संणद्धो मअरद्धओ त्ति कित्ति उत्तमीअदि।*

सं छाया- *ननु तस्मिन्नपि संनद्धो मकरध्वज इति किमित्युत्ताम्यते।*

हिन्दी-अनुवाद- *अजी, उनमें भी तो कन्दर्प तैयार या सवार है, अतः क्यों इतनी व्याकुल हो रही हो?*

नायिका- सहि, अलं आसासण सील दाए।

सं० छाया- सखि, अलमाश्वासन शीलतया।

हिन्दी-अनुवाद- सखी, आश्वासनशीलता रहने दो।

सखी- *णं जो जो तस्स महाभाअस्स कदे पच्छावइदुमाढत्तो सिलोओ ण किं विरइअदि।*

सं० छाया- *ननु यः तस्य महाभागस्य कृते प्रस्तावयितुंमारब्धः श्लोको न किं विरच्यते।*

हिन्दी-अनुवाद- *अजी, उन महाभाग के लिए जो श्लोक प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया था उसे क्यों नहीं रचती हो ?*

नायिका- *तुमं जेव्व सक्का सिलोअजु अलं करेसु। मह मम्म हरस संकप्पविकप्पेहिं अन्तरिज्जदि पणि धाणदिट्ठी*

सं० छाया- *त्वमेव शक्ता श्लोक युगलं कुरूष्व। मम मन्मथरससंकल्पविकल्पै रन्तर्यते प्रणिधानदृष्टिः।*

हिन्दी-अनुवाद- *तुम्हीं समर्थ हो, दो श्लोक बनाओ। मेरी तो कामरस के संकल्प-विकल्पों से एकाग्रता की दृष्टि ही अन्तर्हित हो गयी है।*

सखी- *(नातिचिरात्स्थित्वा) सहि अवधारेषु। (संस्कृतमाश्रित्य)*

नीरागा मृगलाञ्छने मुखमपि स्वं नेक्षते दर्पणे
खिन्ना कोकिल कूजितादपि गिरं नोन्मुद्रयत्यात्मनः।

चित्रं दुःसहदाहदायिनि धृत द्वेषापि पुष्पायुधे
मुग्धाक्षी सुभग त्वयि प्रतिपदं प्रेमाधिकं पुष्यति।।२६।।

हिन्दी-अनुवाद- *(बहुत देर तक ठहर कर) सखी, समझो।*

(संस्कृत का आश्रय लेकर)

चन्द्रमा के प्रति राग रहित होने पर भी दर्पण में अपना मुख नहीं देखती है। कोयल की कूक से भी खिन्न होकर अपनी वाणी नहीं प्रकाशित करती है। आश्चर्य है कि दुःसह ताप देने वाले कामदेव के प्रति द्वेष धारण कर लेने पर भी हे सुन्दर! (वह) सुन्दरी प्रत्येक पग में आपके प्रति अधिक प्रेम पुष्ट करती है।।२६।।

अपि च

प्रोतेति प्रतिबिम्बितेति घटितेत्यास्थानशालामणि
स्तम्भन्यस्तभरामपि प्रिय सखी वर्गो न जानातिताम्।
अङ्गेनोत्पुलकेन किं तु सुचिरं गीतं कुरङ्गी व सा
तन्वङ्गी तव श्रृण्वती नयन जैरम्भोभिरून्नीयते।।३०।।

हिन्दी-अनुवाद- और भी,

प्रिय सखियों का समूह, बँधी हुई, प्रतिबिम्बित हुई और घटित हुई (की तरह) सभा-भवन के मणिनिर्मित स्तम्भ पर भार देकर स्थित भी उसे नहीं जानती है, किन्तु वह सुन्दरी रोमान्चित अंग से आपका गीत हरिणी की तरह सुनती हुई नेत्रों के जल (आँसुओं) से उठायी जाती है।।३०।।

नायिका- सहि, साहु विरइदम्। सरसकइत्तणेण परभूमि मारो विदो विप्पलम्भो।

सं० छाया- सखि, साधु विरचितम्। सरसकवित्वेन परमभिमारोपितो विप्रलम्भः।

हिन्दी-अनुवाद- सखी, अच्छा रचा है। सरस कविता के द्वारा विप्रलम्भ श्रृंगार को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है।

राजा- प्रिये, अन्तरङ्गासि काव्योपनिषदाम्।

हिन्दी-अनुवाद- प्रिये, तुम काव्य और उपनिषदोंकी अन्तरंग (मर्मज्ञ) हो।

नायिका- सहि, मए वि विरइदो संदेसो।

सं० छाया- सखि, मयापि विरचितः संदेशः।

हिन्दी-अनुवाद- सखी, मैंने भी संदेश रचा है।

सखी- *कीरिसो। गण्डूसेहि सवणाइं रस दाणेण।*

सं० छाया- *की दृशः। गण्डूषय श्रवणे रसदानेन।*

हिन्दी-अनुवाद- *कैसा? रसदान से कानों को भर दो ।*

नायिका- किं चन्दो तह चन्दणव्व सिसिरो किं बल्लई पञ्चमो
कण्णे वल्लहसंगमो मणसिजो किं वा सपक्खट्ठिदो।

दिट्ठी किं कमलेसु रज्जदि मणं किं णाम मे दक्खिणो
सो वा दक्खिणमारूदोजइ तुए मज्झत्थमालम्बिदम्।।३१।।

सं० छाया- किं चन्द्रस्तथा चन्दन इव शिशिरः किं वल्लकी पञ्चमः
कर्णे वल्लभ संगमो मनसिजः किं वा सपक्षस्थितः।

दृष्टिः किं कमलेषु रज्यति मनाक्किं नाम मे दक्षिणः
स वा दक्षिणमारूतो यदि त्वया माध्यस्थ्यमालम्बितम्।।

हिन्दी-अनुवाद- *और चन्द्रमा क्या है? चन्दन के समान शिशिर ऋतु ! वीणा का पञ्चम स्वर क्या है? कान में प्रिय मिलन ! अथवा कन्दर्प क्या है? समान (अपने) पक्ष में स्थित व्यक्ति! दृष्टि क्या है? कमलों में किन्चित् रञ्जित होना। दक्षिण (नायक) कौन है? वही दक्षिण दिशा का पवन यदि आपने मध्यस्थता का अवलम्बन ले लिया है।।३१।।*

विदूषक- *भो, एण्हिं पत्तिज्जसि।*

सं० छाया- *भोः, अधुना प्रत्याय्यसे।*

हिन्दी-अनुवाद- *अजी, अब तुम विश्वास कराये जा रहे हो।*

(राजा मोदते)

(राजा प्रसन्न होता है)

सखी- सहि, णिअदसाणिवेदण गब्भणिब्भरं दढं उपलद्धो भट्टा।

सं० छाया- सखि, निजदशानिवेदन गर्भनिर्भरं दृढमुपालब्धो भर्ता।

हिन्दी-अनुवाद- हे सखी! अपनी दशा निवेदन करने के भीतर तुमने स्वामी को दृढ़तापूर्वक उलाहना दिया है।

नायिका- एवं सुणीअ किं पडिपज्जदि।

सं० छाया- एवं श्रुत्वा किं प्रतिपद्यते।

हिन्दी-अनुवाद- ऐसा सुन कर वे क्या समझेगें?

सखी- किं अण्णम्।

जं जलरासिसुताए नवरसतण्हाउलेण कण्हेण।
ससिहण्डमण्डणेण वि पडिबण्णं जं च गोरीए।।३२।।

सं० छाया- किमन्यत्।

यज्जलराशिसुताया नवरसतृष्णा कुलेन कृष्णेन।
शशिखण्डमण्डनेनापि प्रतिपन्नं यच्च गौर्या।।३२।।

हिन्दी-अनुवाद- और क्या ?

हिन्दी-अनुवाद- जो लक्ष्मी को नवरस की प्यास से व्याकुल विष्णु ने और जो गौरी को अर्द्धचन्द्र विभूषित शंकर ने समझा (वही स्वामी तुमको समझेंगें।)।।३२।।

नायिका- अवि ण कहिं पि अवहीर इस्सदि सखी।

सं० छाया- अपि न कुत्राप्य वधीरयिष्यति सखी।

हिन्दी-अनुवाद- सखी कहीं भी अनादर नहीं करेगी।

सखी- (विहस्य।)

तुम्हारिसीओँ परिहवविसअम्मि कहं न वज्जन्ति।
किज्जउ कहं विअ फुडं णिअडाहिँ सुहाइदं दूरे।।३३।।

सं० छाया- *युष्मादृश्यः परिभव विषये कथमिव व्रजन्ति।*
क्रियतां कथमिव स्फुटं निगडैः सुखायितं दूरे।।

हिन्दी-अनुवाद- *(हँसकर)*

तुम जैसी स्त्रियाँ किसी तरह अनादर के विषय में पड़ जाती हैं। (अर्थात् अनादर पा जाती हैं।) फिर किन्हीं लोगों को किसी तरह बेड़ी में पड़ जाने पर आगे चल कर स्पष्ट रूप से सुख मिलता है।।३३।।

नायिका- *(सोत्कलिकं संस्कृतमाश्रित्य।)*

जाने सखि स्मर शिखिज्वलिताजनस्य
तस्य व्रजामि निकटं परिभूय लज्जाम्।

पश्चाद्यथाभिरुचितं विदधातु देवी
किं दुःसहं विरह पावकतोऽपि वा स्यात्।।३४।।

हिन्दी-अनुवाद- *(चिन्तातुरता के साथ संस्कृत भाषा का आश्रय लेकर)*

सखी, कामाग्नि से जलती हुई मैं लज्जा छोड़ कर उस व्यक्ति के पास चली जाऊँ, पश्चात् देवी जो दण्ड देना चाहें दें अथवा क्या (वह दण्ड) विरहाग्नि से भी बढ़कर दुःसह होगा ?।।३४।।

विदूषक- भो, ण जुत्तं दाणिं पडिवालणम् उपसरीअदु।

सं० छाया- भोः, न युक्तमिदानीं प्रतिपालनम्। उपस्त्रियताम्।

हिन्दी-अनुवाद- अजी, अब प्रतीक्षा करना उचित नहीं हैं। समीप जाइए।

राजा- *मूर्ख, किं तरलोऽसि।*

हिन्दी-अनुवाद- मूर्ख! क्या चंचल हो।

सखी- सहि, किं उत्तावलासि। तारिसाइं जेव्व तुह लक्खणाइं जेहिं किं ण संभावीअदि।

सं० छाया- सखि, किमाकुलासि तादृशान्येव तव लक्षणानि यैः किं न संभाव्यते।

हिन्दी-अनुवाद- सखि, क्या व्याकुल हो ? तुम्हारे लक्षण वैसे ही हैं जिनसे क्या नहीं संभावित है?

नायिका- ईरिसाइं मह भाअधेआइं जेहिँ मिच्चुसंभावणा। (इति संस्कृतमाश्रित्य)

सं० छाया- ईदृशानि मम भागधेयानि यैर्मृत्युसम्भावना।

हिन्दी-अनुवाद- मेरे ऐसे भाग्य हैं, जिनसे मृत्यु की संभावना है।

(संस्कृत का आश्रय लेकर।)

गुर्वी धरं दुरभि योगनिधिर्मनोभू-
रारूढवान विषये मनसोऽनुबन्धः।

बन्धुर्न कश्चिदपि निघ्नतया स्थितिश्च
हा निश्चितं मरणमेव ममेह जातम्।।३५।।

(इति मोहमुपगच्छति।)

हिन्दी-अनुवाद- दुष्ट आक्रमण का खजाना कामदेव बहुत ऊँचे स्थान पर चढ़ गया है। अप्राप्य स्थान में मन की आसक्ति हो गयी है। (अपना) कोई भी बन्धु नहीं है और स्थिति पराश्रित है। हाय! मेरा मरण ही निश्चित हो गया है।।३५।। (यह कह कर मोह को प्राप्त हो जाती है, अर्थात् चेतनाहीन हो जाती है।)

विदूषक- भो पमादो पमादो। मए पढमं जेव्व आअक्खिदं उपसप्पीअदु।

सं० छाया- भोः, प्रमादः प्रमादः। मया प्रथम मेवाख्यातमुपसृप्यतामिति।

हिन्दी-अनुवाद- अरे, असावधानी हो गयी, असावधानी हो गयी। मैंने पहले ही कहा था कि (उसके) समीप जाइए।

(राजा ससंभ्रममुपसर्पति।)

(राजा हड़बड़ी में समीप पहुँचता है)

सखी- विजयताम्।

हिन्दी-अनुवाद- (महाराज की) विजय हो।

विदूषक- अब्बम्हण्णं अब्बम्हण्णम्।

सं० छाया- अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्।

हिन्दी-अनुवाद- बचाओ बचाओ (एक जघन्य कार्य हो गया है।)

सखी- महाराअ, हत्थेण फंसीअदु जेण चेअणं पावेदि।

सं० छाया- महाराज, हस्तेन स्पृश्यतां येन चेतनां प्राप्नोति।

हिन्दी-अनुवाद- महाराज ! हाथ से स्पर्श करें जिससे चेतना प्राप्त हो जाय।

राजा- (तथा कुर्वन्।)

विलोलत्वं चक्षुः स्पृशति मुकुलावस्थमपि य
द्दुरस्विद्यन्मध्यं कुचकलशयोरुच्छ्वसिति यत्।

प्रसीदत्युद्दामा यदपि वदनश्रीः सपुलकं
तदेतस्याः संज्ञा ध्रुवमभिमुखी पक्ष्मलदृशः।।३६।।

(पुनरवलोक्य।) अहो सर्वावस्थाभिरव्यवधीयमानं रामणीयकमस्याः। तथा हि।

हिन्दी-अनुवाद- राजा- (वैसा करते हुए)

जो (इसका) नेत्र अधमुँदा होने पर भी चंचलता का स्पर्श कर रहा है जो (इसका) मध्यभाग पसीने से अछूता नहीं है जो (इसके) दोनों कुचकलश धड़क रहे हैं और जो (इसकी) बढ़ी चढ़ी हुई मुखशोभा रोमांच के साथ खिल रही है उससे इस सुनयना की चेतना निश्चित ही लौट रही है।।३६।।

(पुनः देखकर) अहा, इसका सौन्दर्य सभी अवस्थाओं से व्यवधान-रहित है। जैसे कि :-

भ्रूलेखा विनिवृत्तनृत्तरचना मुक्ताञ्चनोदञ्चन-
व्यापारा कुसुमास्त्रकार्मुकलतामुष्याः सगोत्रीकृता।

मीलल्लीलमुपैति लोचनयुगं निद्रालुनीलोत्पल
स्पर्धां श्वासकदर्थितोऽपि भजते बिम्बाधरः स्वां धुरम्।।३७।।

हिन्दी-अनुवाद- इसकी भौंहों की रेखा नाचने की रचना से निवृत्त हो गयी है। चढ़ना और टेढ़ी होने की क्रिया भी छोड़ चुकी है, कामदेव की धनुषलता को अपने समान बना लिया है, लीलापूर्वक मूँदती हुई दोनों आँखें सोते हुए नीलकमल की स्पर्धा कर रही हैं और बिम्बाफल के समान अधर श्वास से पीड़ित या तिरस्कृत होने पर भी अपना उच्चस्थान बना रहा है।।३७।।

विदूषक- भोदी मम पिअवअस्सहत्थेण फंसिज्जन्ती कहं ण चेअणं पडिवज्जदि।

सं० छाया- भवती मम प्रियवयस्यहस्तेन स्पृश्यमाना कथं न चेतनां प्रतिपद्यते।

हिन्दी-अनुवाद- आप मेरे प्रिय मित्र के हाथ से स्पर्श की जाती हुई चेतना क्यों नहीं प्राप्त करती हैं?

राजा- (सानन्दमात्मगतम्)

भग्नं मृगाङ्कसरसीव सुधानिधाने
गर्भे निषण्णमिव पङ्कजकैरवाणाम्।

अप्यत्र यन्त्रविनिपीडित पारिजात
निःस्यन्दधौतमिव निर्वृतिमेति चेतः।।३८।।

हिन्दी-अनुवाद- *(प्रसन्नता से/मन में प्रसन्नता से अपने आप।)*

अमृत की खान चन्द्रमा रूपी सरोवर में निमग्न (डूबे हुए) की तरह कमलों और कुमुदों के गर्भ में बैठे हुए की तरह और यन्त्र (कल) से निचोड़े गए कल्पवृक्ष के रस से धुले हुए की तरह (मेरा) चित्त यहाँ भी आनन्द प्राप्त कर रहा है।।३८।।

सखी- *सहि, एदेण हत्थ फंसेण ण उच्छससि त्ति अहो दे कठिणत्तम्।*

सं० छाया- सखि, एतेन हस्तस्पर्शेन नोच्छुससीत्यहो ते कठिनत्वम्।

हिन्दी-अनुवाद- *इस हाथ के स्पर्श से तुम ऊँचा श्वास नहीं ले रही हो, यह तुम्हारी कठोरता आश्चर्यजनक है।*

नायिका- *(किञ्चित्समाश्वस्य।) अम्भो, किंत्ति रसाअण सित्तेब्व णिव्वुदिं उव्वहामि। एसो जिआअणो कङ्खिदो जणो। (इति किञ्चिद्दृष्ट्वा सलजमास्ते।)*

सं० छाया- अहो, किमिति रसायनसिक्तेव निर्वृतिमुद्वहामि। एष जीवनः काङ्क्षितोजनः।

हिन्दी-अनुवाद- *नायिका- (कुछ आश्वस्त होकर) अहा, क्या यह रसायन से सिक्त हुई की तरह चैन वहन कर रही हूँ। यह तो वांच्छित व्यक्ति जिलाने वाला है। (यह कह कर कुछ देर तक लज्जित हो जाती है।)*

राजा- वद सुवदने किं व्यामोहः समाश्वसिहि द्रुतं
प्रणयिनि जने किं प्रत्याशा विरोधि विचेष्टितम्।

नय नयनयोरातिथ्यं मा मनोभव वागुरा
परिचरतु मां नीलाम्भोजस्त्रजः कलयान्विता।।३६।।

हिन्दी-अनुवाद- सुमुखी ! बोलो, क्या परेशानी है? आश्वस्त हो जाओ । प्रेमी व्यक्ति के प्रति आशा के विरुद्ध चेष्टा क्यों करती हो ? नेत्रों का अतिथि-सत्कार कराओ। नीलकमल की माला के लवमात्र से युक्त काम का पाश मुझे न घुमाये ।।३६।।

विदूषकः- भोदि, किं ण अलीअणिद्दा विद्दावी अदि। पिअवअस्सो एव्वं दीणत्तणं दंसेदि।

सं० छाया- भवति किं नालीकनिद्रा विद्राव्यते। प्रिय वयस्य एवं दीनत्वं दर्शयति।

हिन्दी-अनुवाद- माननीये ! क्यों झूठी निद्रा को भंग नहीं कर रही हैं? प्रिय मित्र इस प्रकार दीनता दिखा रहे हैं।

सखी- (सहासम्) किं त्ति पडिपत्तिमूढ दाअङ्गी किदेत्ति। (एनां बलादानीय राजान्तिकमुपवेशयति।)

सं० छाया- किमिति प्रतिपत्तिमूढता अङ्गीकृतेति।

हिन्दी-अनुवाद- (हँसी के साथ।) बुद्धि की मूढ़ता क्यों स्वीकार कर ली है? (इसे बलपूर्वक लाकर राजा के समीप बैठाता है।)

नायिका- (सकृतककोपम्।) अबेहि पडिहासशीले। (इति सासूयमवलोकयति।)

सं० छाया- अपेहि परिहासशीले।

हिन्दी-अनुवाद- (कृत्रिम क्रोध के साथ।) दूर हो जा मज़ाक करने वाली ।(यह कह कर असूया (गुणों में दोष निकालना) के साथ ताकती है।

राजा- इयं यदालोकयति त्रपानता दृशा नवेन्दीवर दामदीर्घया।
तदन्य देवाभ्यधिकं रसायनादवैमि पुष्पायुधदेह दोहदम्।।४०।।

(इति पटाञ्चले मृशन्।)

हिन्दी-अनुवाद- यह जो लज्जा से झुक कर नये नीलकमल की माला के समान लम्बी आँखों से देखती है वह रसायन से कहीं अधिक दूसरी ही चीज़ है जिसे मैं कामदेव के शरीर का दोहद समझता हूँ।।४०।।

(वस्त्र का आँचल छूते हुए।)

नायं जनः किमु परिच्छद मध्यमास्ते
यल्लज्जया ननु तनूदरिमुद्रितासि।

आलिङ्ग मां परिचितानि चिराद्भवन्तु
देहे हरीन्ति हरिचन्दन पल्लवानि।।४१।।

(इत्यालिङ्गितुमिच्छति।)

हिन्दी-अनुवाद- हे सुन्दरि! यह जन क्या परिजनों के बीच नहीं है जो तुम निश्चय ही लज्जा से ढ़की हुई हो । बहुत काल तक मेरा आलिंगन करो ताकि शरीर में हरे हरिचन्दन वृक्ष के पल्लव (के समान तुम्हारे अंग) परिचित हों ।।४१।।

(यह कह कर आलिङ्गन करना चाहता है।)

नायिका- (स्वंगतम्।) हिअअ, मणोरहाणं वि उपरि वट्टसि।

सं० छाया- हृदय, मनोरथानामप्यु परिवर्तसे।

हिन्दी-अनुवाद- (मन में।) हृदय, मनोरथों से भी ऊपर विद्यमान हो।

सखी- दिज्जउ एदाणं वीसम्भ गोट्ठी। (इति शनकैः किंचिद पसरति।)

सं० छाया- दीयतामेतयो विस्रम्भ गोष्ठी।

हिन्दी-अनुवाद- इन दोनों को प्रेमालाप करने दीजिए ।

(यह कह कर धीरे-धीरे कुछ हट जाती है।)

विदूषकः- भोदि, एसा देवी आगदा।

सं० छाया- भवति, एषा देव्यागता।

हिन्दी-अनुवाद- माननीये! यह देवी आ गयीं।

(सखी ससंभ्रमं निवर्तते। नायिका सभयमुत्तिष्ठति।)

राजा- (सशङ्कं दिशोऽवलोक्य।) मूर्ख क्वासौ।

(सखी शीघ्रता से लौटती है। नायिका भय के साथ उठ जाती है।)

हिन्दी-अनुवाद- राजा (शंकापूर्वक चारों ओर देखकर ।) मूर्ख! वह कहाँ हैं?

विदूषक- भो, तत्तभोदिं कण्णसुन्दरिं उद्दिसिअ देवी उज्जाणमलं करेदित्ति भणिदम्।

सं० छाया- भोः, तत्रभवती कर्णसुन्दरीमुद्दिश्य देव्युद्यानमलंकरोतीति भणितम्।

हिन्दी-अनुवाद- अजी, माननीया कर्णसुन्दरी के उद्देश्य से देवी उद्यान को सुशोभित कर रही हैं, यह कहा।

राजा- (अग्रतोऽवलोक्य।) कथं सत्यमेवागता देवी। अहो! ब्रह्मबन्धोरमुष्य फलितं मङ्गलेन।

हिन्दी-अनुवाद- (सामने देखकर) क्या सचमुच देवी आ गयीं? अहो, इस मूर्ख ब्राह्मण का मंगल फलित हो गया।

नायिका- (विलोक्य। आत्मगतम्।) अणब्भए इदं वज्जपउणं पेक्खिदम्।

सं० छाया- अनभ्रे इदं वज्रपतनं प्रेक्षितम्।

हिन्दी-अनुवाद- (देखकर। मन में।) बिना बादल के यह बज्रपात देखा।

सखी- *महाराअ, सुमरिदव्वो अअंजणो। संपदं अण्णदो गच्छम्ह।*

सं० छाया- *महाराज, स्मर्तव्योऽयं जनः। सांप्रतमन्यतो गच्छावः।*

हिन्दी-अनुवाद- *महाराज, इस जन का स्मरण रखना । इस समय दूसरी ओर हम दोनों जा रही हैं।*

विदूषक- *अम्हे वि एव्वं जेव्व करेम्ह।*

सं० छाया- आवामप्येवमेव कुर्वः।

हिन्दी-अनुवाद- *हम दोनों भी ऐसा ही करें।*

(नायिका सख्या सह निष्क्रान्ता।)

(नायिका सखी के साथ चली गयी।)

राजा- *(निःश्वस्य।)*

कथमपि दिवः पुञ्जीभूयच्युतामिव कौमुदीं
कुमुद सुहृदः प्राप्य प्राणाधिकां विधिकारणात्।

अहरहरहो प्राप्तं लीलारसोर्मिषु मज्जता
क्षणमपि मया न स्वातन्त्र्यं किमत्र विधीयताम्।।४२।।

हिन्दी-अनुवाद- *राजा (लम्बी साँस लेकर) किसी तरह एकत्रित होकर आकाश से गिरी हुई चन्द्रमा की चाँदनी की तरह प्राणप्रिया को भाग्य से पाकर क्रीडारस की तरंगों में मग्न होते हुए, परम खेद है कि मैंने क्षण भर भी स्वतन्त्रता नहीं पायी ।।४२।।*

(ततः प्रविशति देवी हारलता च।)

हारलता- *कहं भट्टावि इह जेव्व।*

सं० छाया- कथं भर्तापी हैव।

हिन्दी-अनुवाद- *(तदनन्तर देवी और हारलता प्रवेश करती हैं।) क्या स्वामी भी यहीं हैं?*

देवी- राजकज्जविरहे इमस्सिं काले इह ज्जेव्व दिणं णिव्विण्णो विणोदइ अज्जउत्तो अत्ताणअं त्ति।

सं० छाया- राजकार्य विरहेऽपिस्मिनकाले इहैव दिनं निर्विण्णो विनोदयत्यार्यपुत्र आत्मानमिति।

हिन्दी-अनुवाद- राजकार्य के न रहने पर भी दिनभर खिन्न आर्यपुत्र इस समय यहीं पर मनोरन्जन कर रहे हैं।

राजा- अपि विज्ञातोऽहं देव्या।

हिन्दी-अनुवाद- क्या देवी ने मुझे जान लिया ?

विदूषक- तधा कुविआ वअस्सेण अणुणीदा कधं विप्पदीवं पसज्जिअ अनुसरिस्सदि।

सं० छाया- तथा कुपिता वयस्येनानुनीता कथं विप्रतीपं प्रसज्ज्यानुसरिष्यति।

हिन्दी-अनुवाद- इस प्रकार कुपित होने पर मित्र के द्वारा मना ली गयी कैसे विपरीत पाकर पीछा करेंगी?

राजा- तदितोऽभ्यन्तरमेव व्रजावः।

हिन्दी-अनुवाद- तो यहाँ से भीतर ही हम दोनों चलें।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

(यह कह कर सब बाहर चले गये।)

(इति द्वितीयोऽङ्कः)

(दूसरा अङ्क समाप्त)

तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशतश्चेट्यौ।)

एका- सहि बउलावलि, सो ण हु बन्धवो भणीअदि जस्सिं हिअअम्मि विअ णी सङ्कदाए ण रहस्सं संचारी अदि। ता कहेसु कीसु तुअं दीवए वासे मन्तअन्ती आसि।

सं० छाया- सखि, बकुलावलि, स न खलु बान्धवो भण्यते यस्मिन्हृदय इव निःशङ्कतया न रहस्यं संचार्यते। तत्कथय कस्मात्त्वं देव्या वासे मन्त्रयन्ती आसीः।

हिन्दी-अनुवाद- सखी बकुलावली! वह बन्धु नहीं कहा जाता जिसमें हृदय के समान निःशंक होकर रहस्य का संचार नहीं किया जा सकता। (अर्थात् बन्धु वही है जिससे रहस्य की बात की जा सके।) इसलिए कहो किसलिए तुम महारानी के निवास पर मन्त्रणा कर रही थी ?

बकुलावली- सहि मन्दोअरि, ण अत्थि मम बीसासो। तुअं चावलभावेण विसुमरिअ कस्सपि पुरदो कहिस्ससि त्ति ण आवेदेमि। जदि कुप्पसि ता एवं णिवेदीअदि। परं मन्तभेदो रक्खिदव्वो।

सं० छाया- सखि मन्दोदरि, नास्ति मम विश्वासः। त्वं चापल भावेन विस्मृत्य कस्यापि पुरतः कथयिष्यसीति नावेदयामि। यदि कुप्यसि तदे वं निवेद्यते। परंमन्त्रभेदो रक्षितव्यः।

हिन्दी-अनुवाद- सखी मन्दोदरी! मुझे विश्वास नहीं हैं। तुम चंचलता के कारण भूलकर किसी के आगे कह दोगी इसलिए नहीं कह रही हूँ । यदि कुपित होती हो तो लो इस प्रकार निवेदन कर देती हूँ परन्तु रहस्य भेद प्रकट न करना।

मन्दोदरी- अविस्सासिणि, कहेसु।

सं० छाया- अविश्वासिनि, कथय।

हिन्दी-अनुवाद- हे अविश्वास करने वाली! कहो।

बकुलावली- सहि, भट्टा बिज्जाहरकण्णाए अणुरत्तचित्तो, परं देवीकारणेण किं पि कादुंण सक्कुणोदित्ति सव्व गदो पवादो। किं तु भट्टदारिआए कलहाअन्तो अवलावं करेदि। अज्ज क्खु पिअन्तअकेण अज्जबादराअणेण अन्ते उरसालाए पच्छादोणिहुअं हुविअ अज्ज पओसे परिकलिअमअणुज्जाणए संकेदो गहिदोअवअं मन्तिदं ण वेत्ति विरहले हो अ णिअकरे कदो। देवीए सव्वं पि सुणिअ अहं भणिदा। अज्ज मए कण्ण सुन्दरीरूएण तुए तीअ सही रूएण गदुअ अज्जउत्तो वञ्चिदव्वो। ता एदाए वत्ताए रक्खणं कदुअ उअअरणं सज्जीकरेसु त्ति।

सं० छाया- सखि, भर्त्ता विद्याधर कन्यायामनुरक्तचित्तः परं देवी कारणे न किमपि कर्तुं न शक्नोतीति सर्वगतः प्रवादः। किं तु भर्त्तृदारिकया कलहायमानोऽपलापं करोति। अद्य खलु प्रिय आर्य बादरायणेनान्तः पुर शालायाः पश्चान्निभृतं भूत्वाद्य प्रदोषे परिकलित मदनोद्यानके संकेतो गृहीतः मन्त्रितं न वेति विरहलेखश्च निजकरेकृतः। देव्या सर्वमपि श्रुत्वाहं भणिता। अद्य मया कर्णसुन्दरी रूपेण त्वया तस्याः सखी रूपेण गत्वार्य पुत्रो वञ्चयितव्यः। तदस्या वार्ताया रक्षणं कृत्वोपकरणं सज्जी कुरूष्वेति।

हिन्दी-अनुवाद- सखी! स्वामी का मन विद्याधर की कन्या में अनुरक्त हो गया है, परन्तु महारानी के कारण कुछ भी नही कह पा रहे हैं, इस बात की कानाफूँसी सब जगह चल रही है। किन्तु युवराज्ञी के साथ कलह की बात का अपलाप करते हैं। प्रिय बादरायण ने अन्तःपुर की शाला के पीछे गुप्तरूप से आज प्रदोष काल में जाने हुए मदनोद्यान में (मिलने का) संकेत किया है। मन्त्रणा की या नहीं (इसके प्रमाण स्वरूप) विरह-पत्र अपने हाथ में लिया। महारानी

से सब कुछ सुन कर मैं कही गयी :- आज मुझे कर्णसुन्दरी के रूप से और तुझे उसकी सखी के रूप से जानकर आर्यपुत्र को छलना चाहिए। इसलिए इस बात को गुप्त रखकर साधन तैयार करो।

मन्दोदरी- अहो, संकडे पडिदो महाराओ। (इत्यग्रतोऽवलोक्य।) एसो भट्टा लच्छी सणाहो णूणं एत्थ रमणपगीवए तंव ज्जेव पडिपालअन्तो चिट्ठदि। ता एहि गच्छामो। जाव अम्हे पेक्खिअ ण किं पि डप्पिस्सदि।

सं० छाया- अहो, संकटे पतितो महाराजः। एष भर्त्ता लक्ष्मीसनाथो नूनमत्र रमण एवं प्रति पालयंस्तिष्ठति। तदेहि गच्छावः। याव दावां प्रेक्ष्य न किमपि।

हिन्दी-अनुवाद- हाय! महाराज संकट में पड़ गये। ये लक्ष्मीवान् स्वामी निश्चित ही यहाँ प्रतीक्षा करते हुए खड़े हैं। इसलिए आओ, चलें। जब तक हम दोनों को देखकर कुछ भी नहीं .....।

(इति निष्क्रान्ते।)
(यह कह कर दोनों चली गयीं।)

प्रवेशकः
(प्रवेशक समाप्त)

(ततः प्रविशति यथा निर्दिष्टो राजा।)
(इस स्थिति में। राजा प्रवेश करता है।)

राजा- न स्वेच्छागतयोऽसि साचिवलनावैचित्र्य शून्या दृशो नाधौता धर कान्ति संस्तुत जनालापेऽपि लीलास्मितम्। वाचां विस्मरणेऽपि न व्यवहिता विच्छित्ति संक्रान्तयस्तात्पर्यं मदनेन दर्शित महो वैदग्ध्य दीक्षा विधौ।।१।।

हिन्दी-अनुवाद- (उसकी) दृष्टियाँ स्वेच्छा से चलने वाली होने पर भी तिरछी

चाल (कटाक्ष करने की) विलक्षणता से (शून्य) नहीं हैं, परिचित जनों से बातचीत करने में भी (उसकी) लीला पूर्वक मुस्कराहट अधर की कान्ति को मलिन नहीं होने देती और बातों को भूल जाने पर भी भावभंगिमा के संचार व्यवहित नहीं होते। अहा! निपुणता की दीक्षा देने में कामदेव ने अभिप्राय दर्शित किया है।।१।।

अपि च *और भी*

तद्वक्त्रेण विलुप्तकान्तिमहिमा वर्णोज्झितः शर्वरी
मबह्मण्यमिव प्रसारितकरः कृत्स्नां विधत्ते विधुः।

आप्याविष्कृत पत्रमुत्पलवनं तल्लोचनेन्दीवर
च्छायारिक्थमिव द्विरेफपटली वाचालमाकाङ्क्षते।।२।।

हिन्दी-अनुवाद- *उसके मुख से विलुप्त हुई कान्ति की महिमा वाला (अत एव अपने) वर्ण को त्यागे हुए चन्द्रमा के किरणों को फैलाकर सारी रात को मानो अब्राह्मण्य (अब्राह्मणोचित) बना रहा है और भ्रमरों की पंक्ति प्रकट पत्तों वाले नील कमल के वन को उस (नायिका) के नेत्र रूपी कमलों की छाया सम्पदा के समान शब्दायमान की आकांक्षा करती है।।२।।*

(इति साङ्गभङ्गम्।)

तत्पादद्वितयस्य दास्यमपि न प्राप्नोति पङ्केरुहं
तद्भ्रूभङ्गविनिर्जितं स्मर धनुर्नम्रं सदा तिष्ठति।

इन्दुः किं दुरतिक्रमस्य कुरूतां धातुः सुधासूतिर
प्यङ्कं तन्मुखकिंकरत्वपिशुनं धत्ते सहोत्थं यतः।।३।।

हिन्दी-अनुवाद- *(अँगड़ाई के साथ) कमल उसके चरणों की दासता भी नहीं प्राप्त कर सकता है। उसकी भ्रूभंगिमा से पराजित कामदेव का धनुष सदा झुका रहता है। चन्द्रमा अमृत का उद्गम होकर भी दुर्लन्घ्य*

विधाता का क्या करें क्यों कि (वह) उस (नायिका) के मुख के दास होने की सूचना देने वाला सहोत्पन्न कलंक धारण करता है।।३।।

(स्मरणमभिनीय।)

प्रायो दास्यति नो पयोधर तटी गन्तुं पुरस्तादिति
ध्यानेनेव चकास्ति साचिगमने शिक्षारसश्चक्षुषोः।

अन्तः स्थानमिव स्मरैकसुहृदः कस्यापि दातुं बहि
निर्गन्तुं हृदयादपि स्तनयुगं विस्तारि संनह्यति।।४।।

हिन्दी-अनुवाद- *(स्मरण का अभिनय करके) कुचों का भार प्रायः आगे न जाने देगा। आँखों की टेढ़ी चाल में शिक्षा-रस मानों ध्यान द्वारा दीप्त हो रहा है। कन्दर्प के एक मात्र मित्र किसी व्यक्ति को भीतर (अन्तःकरण में) स्थान देने के लिए मानों दोनों विशाल कुच हृदय से भी बाहर निकलने में बाँध रहे हैं।।४।।*

अपि च- *और भी*

कान्तिः कापि कपोलयोः परिणमत्ताली दलस्पर्धिनी
वर्धन्ते मधुपावली वलयिनः श्वासानिलाः संततम्।

कार्श्यस्यावरणं तरङ्गितगते र्लावण्यमेवाङ्गके
सारङ्गायत चक्षुषः किमथवा सर्वंनवीनायते।।५।।

हिन्दी-अनुवाद- *परिपक्व ताड़वृक्ष के पत्ते से होड़ लगाने वालीं (उसके) गालों की कान्ति अनिर्वचनीय (विलक्षण) है। वलयाकार भ्रमरों की पंक्ति से युक्त श्वासवायु निरन्तर बढ़ रहा है। लहरीदार चालवाली के अंगों में कृशता को ढ़कने वाला सौन्दर्य ही है अथवा क्या (कहें)? सारंग पक्षी की सी लम्बी आँखों वाली का सब कुछ नवीन हो रहा है।५।।*

अपि च- *और भी*

कन्दर्प दैवतनिकेतन वैजयन्ती
यान्ती विलासरसमन्थर मुत्पलाक्षी।

दृष्टिं निवेदितवती मयि कालकूट
लेशान्धकारित सुधा लहरी विचित्राम्।।६।।

हिन्दी-अनुवाद- *कामदेव के भवन की पताका स्वरूप (उस) कमलनयनी ने जाते समय मुझ पर कालकूट विष से अन्धकार युक्त बनायी गयी अमृत लहरी से विचित्र हुई दृष्टि डाली ।।६।।*

(सनिःश्वासम्) तत्किमद्यापि चिरयति वयस्यः।

विज्ञातेङ्गितया तरङ्गितघन क्रोधानुषङ्गं धृतः
किं देव्या प्रतिपालयन्परिजनं तस्याः क्वचित्सुभ्रुवः।

खेदं सैव सखेलवारण गतिर्न प्रापिता चेति मे
चेतः सान्द्र समुल्लसन्नवनवोल्लेखं मुहुस्ताम्यति।।७।।

हिन्दी-अनुवाद- *(ऊँची साँस लेकर) तो क्या अब भी मित्र विलम्ब कर रहे हैं?*

क्या कहीं उस सुन्दरी के परिजन की प्रतीक्षा करते हुए मुझे संकेत से अवगत देवी ने उद्दीप्त क्रोध के कारण पकड़ (देख) तो नहीं लिया ? खेद है कि वही गजगामिनी सुन्दरी मुझे प्राप्त नहीं करायी गयी। (किन्तु) हृदय आनन्दविभोर होकर नयी नयी कामना के साथ बार बार गाढ़ उत्कण्ठा कर रहा है।।७।।

(प्रविश्य)
(प्रवेश करके)

विदूषकः- *दिट्ठिआ वड्ढसि कज्जसिद्धिए।*

सं० छाया- *दिष्ट्या वर्धसे कार्य सिद्ध्या।*

हिन्दी-अनुवाद- *कार्य सिद्धि की बधाई है।*

राजा- *(सहर्षमालिङ्ग्य।) कथमिव?*

हिन्दी-अनुवाद- *(हर्ष के साथ आलिंगन करके) कैसे?*

विदूषक- *(कर्णे) एव्वमेव्वं।*

सं० छाया- *एवमेवम्।*

हिन्दी-अनुवाद- *(कान में) ऐसे ऐसे।*

राजा- *(सानन्दम्।)*

भूयोऽपि तावदिदमेव निवेदय त्वं
चन्द्रांशुभिः कवलिता इव सूक्तयस्ते।

अन्तर्बहिश्च हृदयेन किमप्यमन्द
निःस्यन्दमिन्दुमणिनेव विलीयते मे।।८।।

हिन्दी-अनुवाद- *राजा (आनन्द के साथ) तुम तब तक यही पुनः (बार बार) कहो तुम्हारे सुन्दर वचन मानों चन्द्रकिरणों से ओतप्रोत हैं। चन्द्रकान्त मणि के समान मेरे हृदय से भीतर बाहर प्रचुर बहाव द्रुत या च्युत हो रहा है।।८।।*

(इति सोत्साहम्। आकाशे।)

भव भव शत यामा यामिनि स्वामिनी त्वं
छुरय रजनिनाथ ज्योत्स्न्या दिङ्मुखानि।

अयि विरमय काम क्रेङ्कितं क्रूरबाण
व्ययपरिचयचञ्चत्कर्मणः कार्मुकस्य।।९।।

हिन्दी-अनुवाद- *(यह कह कर उत्साह के साथ। आकाश में।) रात्रि! तुम सौ पहर वाली स्वामिनी बनो! चन्द्र! तुम चाँदनी से दिशा के मुखों को*

पोत दो। काम! तुम क्रूर बाणों के छोड़ने के परिचय से चंचल कर्म वाले धनुष की टंकार को रोक दो ।।६।।

(गगनमवलोक्य।) सखे, समासन्न प्रायस्तत्र गमन समयः तथाहि।

व्योम भ्रान्ति परिश्रमेण तृषितैराकृष्यमाणो हयैः
प्रस्वेदश्लथमान सारथिकर प्रभ्रष्टवल्गैरिव।

अम्भोधेरधिकूलकच्छगहनं क्षीणच्छवि क्ष्माभृतः
स्थित्वा मूर्धनि पश्चिमस्य विशति स्वैरं ग्रहग्रामणी।।१०।।

हिन्दी-अनुवाद- (आकाश को देखकर।) मित्र ! वहाँ जाने का समय निकट आ पहुँचा है।

आकाश में भ्रमण करने के परिश्रम से प्यासे और पसीने से लथपथ सारथि के हाथ से छूटी हुई (बागडोर) या लगाम वाले घोड़ों के द्वारा खींचे जाते हुए सूर्य, अस्ताचल की चोटी पर क्षीण कान्तिपूर्वक रुक कर समुद्र के तट पर विद्यमान सीमावर्ती प्रदेश के वन में स्वेच्छा से प्रवेश कर रहे हैं।।१०।।

अपि च- (और भी)

दूरं भानुरूदञ्चितारूणचरः पाथोनिधौपद्मिनी
स्पर्शासक्तरजोङ्ग राग विगमत्रासा दिवामज्जति।

अन्तः कान्तिमिव प्रियस्य विरहोत्कण्ठाविनोदार्थिनी
रोद्धुं मुद्रयति स्वपङ्क जवनी कोषं च पाथोजिनी।।११।।

हिन्दी-अनुवाद- दूर ऊपर उठे हुए अरुण (नामक सारथि) के साथ सञ्चरण करने वाला सूर्य कमलिनी के स्पर्श करने में आसक्त होने से उसके परागरूप अंगराग के हट जाने के भय से मानों समुद्र में डूब रहा है। प्रियतम के विरह में उत्कण्ठावश मनोविनोद चाहने वाली कमलिनी मानो (अपनी) भीतरी कान्ति और अपने

कमलकोष को रोकने के लिए बन्द कर रही है।।११।।

विदूषकः- भोः पिअवअस्स, अअं अ तीए अवत्थाणि वेदओ विरहले हो वाची अदु।

सं० छाया- भोः प्रिय वयस्य, अयं च तस्या अवस्था निवेदको विरह लेखो वाच्यताम्।

हिन्दी-अनुवाद- हे मित्र! यह उसकी दशा बताने वाला विरहपत्र पढ़िए।

(राजा वाचयति।)

(राजा पढ़ता है।)

एतां गृहाण सखिरत्नगृह प्रविष्टां
ज्योत्स्नां पिधाय सहसैव गवाक्षमार्गान्।

नीलीरसेन सहवर्तय पट्टके च
चन्द्रः समेतु कियतापि परिक्षयेण।।१२।।

हिन्दी-अनुवाद- सखी! खिड़की के मार्गों को एकाएक बन्द करके रत्नों के महल में घुसी इस चाँदनी को पकड़ लो और तख्ते पर नील रंग के साथ ठहरा दो ताकि चन्द्रमा कुछ क्षीणता के साथ आये।।१२।।

ज्योत्स्नानिर्गम मार्गमुद्रण विधिं धत्तोरू कुम्भेमुहुः
स्तारा कारयतान्यतो बत मुहुः संमार्जनीनां चयैः।

पञ्चेषोर्भजताभिचारूचरूतां विस्मार्यतां पञ्चमः
किं चायं पिकमण्डलस्य मयि चेत्सख्यः सुखं वाञ्छथ।।१३।।

हिन्दी-अनुवाद- सखियों! यदि मेरा सुख चाहती हो तो फिर चन्द्रिका के निकलने के मार्गको बन्द करने की विधि बड़े घड़े में पूर्ण करो। फिर खेद है कि झाड़ुओं के समूह से ताराओं को बुहार कर दूसरी ओर कर दो। कामदेव के ऊपर अभिचार (मारण-प्रयोग) करो और

कोयलों के झुण्ड का यह पञ्चम स्वर भुलवा दो ।।१३।।

अपि च- *और भी,*

कलयत दलबन्धं संधिषु न्यस्य सान्द्रं
ननु जतुरसपङ्क पङ्कजेन्दी वराणाम्।

इह विरहवतीनां जीवितं येन नायं
हरति परिमलश्रीबान्धवो गन्धवाहः।।१४।।

हिन्दी-अनुवाद- *शरीर के जोड़ों में सघन लाक्षारस का लेप निश्चित रूप से लगा कर नील कमल के पत्तों की पट्टी बाँध दो, जिससे यहाँ वियोगिनियों के प्राणों का हरण सुगन्धों का श्रेष्ठबन्धु पवन न कर सकें।।१४।।*

नयनयुगल वल्गन्नीर संक्षाल्यमान
स्तन मलयज लेपा सावलेपा कथासु।

इति सुभग समग्रामेव रात्रिं विधत्ते
निरुज सुलभ वस्तु प्रार्थनाभिः सखीनाम्।।१५।।

हिन्दी-अनुवाद- *हे सुन्दर! दोनों आँखों से बहते हुए आँसुओं से धुलते हुए स्तनों पर के श्रीखण्ड चन्दन के लेप वाली तथा बातचीत करने में अन्यमनस्क रहने वाली नायिका सखियों के द्वारा पीड़ा नाशक वस्तुओं के (उपयोग के) लिए प्रार्थना की जाती हुई सम्पूर्ण रात्रि को बिता देती है।।१५।।*

अपि च- *और भी*

धूर्तोऽयं सखि बध्यतामिति विधुं रश्मिव्रजैः कर्षति
ज्योत्स्नाम्भः परतः प्रयात्वितिरिपुं राहुं मुहुर्याचते।

अप्याकाङ्क्षति सेवितुं सुवदना देवं पुरद्वेषिणं
भूयो निग्रह वाञ्छया भगवतः श्रृङ्गार चूडामणेः।।१६।।

हिन्दी-अनुवाद- *सखी! धूर्त चन्द्रमा किरणसमूहों से खींच रहा है, इसलिए इसे बाँध दो, यह किरण-जाल से परे चला जाय, इसके लिए (इसके) शत्रु राहु से बार बार प्रार्थना की जा रही है। सुन्दर मुखवाली (नायिका) भगवान कामदेव को पुनः निगृहीत करने की इच्छा से त्रिपुरासुर के शत्रु महादेव की सेवा करने की भी आकांक्षा करती है।।१६।।*

विदूषकः- *एण्हिं किं मण्णंसि।*

सं० छाया- *अधुना किं मन्यसे।*

हिन्दी-अनुवाद- *अब तुम क्या मानते हो ?*

राजा- *(लेखं बहुलं प्रसार्य।) कथमत्राप्यक्षराणि। (वाचयति।)*

पश्यागच्छ कुतूहलादपि गृहानस्माकमाकर्ण्य
त्वं देविच्छलिता न केनचिदिति प्रोक्तं शुकानामपि।

सा नः कापि सखीषु नास्ति सुभग प्राप्तस्तदीयाङ्गक
स्पर्शोष्मग्लपितो न कामपि रूजं यस्याः किणाङ्कः करः।।१७।।

हिन्दी-अनुवाद- *(पत्र को वहुत फैला कर) क्या यहाँ भी अक्षर हैं? (बाँचता है)*

कुतूहल वश भी हमारे घर आओ, देखो, सुनो! हे देवी! तुम्हें किसी ने छला नहीं है यह सुग्गों का कहना है। सुन्दर ! हमारी सखियों में कोई भी वैसी नहीं है, जिसकी पीड़ा को (शान्त करने के लिए) उसके अंगों के स्पर्श से लगने वाली गर्मी से सुखाया हुआ घट्ठा युक्त हाथ प्राप्त हुआ हो ।।१७।।

कथमपि हृदि कृत्वा त्वद्वियोगाति भारं
सुभग निविडलज्जा मज्जदारम्भमास्ते।

पिशुनयति कृशाङ्गयाः केवलं मन्मथाग्निं
श्वसित पवन धूमश्यामला चित्रशाला।।१८।।

हिन्दी-अनुवाद- *हे सुन्दर! तुम्हारे वियोग का बड़ा बोझा हृदय में रखकर सघन लज्जा से डूबती हुई कार्य करती है। क्षीण अंगो वाली के कामाग्नि को केवल श्वासवायु के भाप से काली बनी हुई चित्रशाला सूचित कर रही है।।१८।।*

विदूषकः- *(पुरतोऽवलोक्य।)* भो, तुम्हाणं दुहुंपि तारिसो सिणेहो जारिसो इमस्स चक्कवाअजुअलस्स।

सं० छाया- भोः, युवयोर्द्वयोरपि तादृशः स्नेहो यादृशोऽस्य चक्रवाक युगलस्य।

हिन्दी-अनुवाद- *विदूषक : (सामने देखकर) अजी! तुम दोनों का वैसा ही प्रेम है जैसा इस चकवे की जोड़ी का।*

राजा- *(सस्पृहमवलोकयन्।)*

रक्ताम्भोरूह चारूचञ्चुपुटकेनोद्धर्तुमिच्छन्निव
भ्रश्यत्पश्यति बिम्बमम्बरमणेश्चक्रह्वयो विह्वलः।

साश्रुर्मुञ्चति चक्षुषी प्रतिदिशं कान्तास्य दीनानना
मा भैषीस्त्वभिति स्वकाल विरहत्राणार्थिनीवानशम्।।१६।।

हिन्दी-अनुवाद- *राजा- (लिप्सा के साथ देखता हुआ।) घबराया हुआ चकवा लाल कमल के समान सुन्दर चोंचों (चञ्चुपुट) से मानों (कमलनाल को) उखाड़ने की इच्छा करते हुए गिर जाने से सूर्य-मंडल की ओर ताकता है। उसकी दीनतापूर्ण मुखवाली प्रिया (चकवी) सतत मानों अपने समय पर होने वाले वियोग से बचाने की प्रार्थना करती हुई 'तुम मत डरो' यह कहती हुई, आँसू बहाती हुई आँखों को प्रत्येक दिशा में छोड़ रही है। (अर्थात् दृष्टिपात कर रही है)।।१६।।*

विदूषकः- *भो, निरन्तर गोधन सहस्स समुद्धूत धूली समुच्छाहिद तरूण तर तिमिररिञ्छोली लञ्छणे समए अणुसरीअदु संकेदट्ठाणम्।*

सं० छाया- *भोः, निरन्तर गोधन सहस्र समुद्धूत धुली समुत्साहित तरूणतर तिमिर पंक्तिलाञ्छनेसमयेऽ नुस्त्रियतां संकेतस्थानम्।*

हिन्दी-अनुवाद- *विदूषक- अजी, निरन्तर हजारों गायों के द्वारा उड़ायी गयीं धूल से उत्साहित अत्यन्त तरूण (घोर) अन्धकार की पंक्ति से चिह्नित समय में संकेत स्थान का अनुसरण करें (वहाँ पहुँचें।)*

राजा- *(ऊर्ध्वमवलोक्य।)*

संधन्ते धूप धूमच्छविबहुलतमः प्राप्यते तारकाभिः
पुष्प स्रग्दामशोभा नभसि नवनिशाकामिनी तल्पकल्पे।

मध्ये कस्तूरिकाङ्कं दधदिव हरिणं किं च संध्यानुबन्धा
दिन्दुः सिन्दूरभिन्नस्फटिक मणि शिलाबुध्न लीलां तनोति।।२०।।

: **तदादेशय तमुद्देशं यावन्नालम्बते जरठतां रजनी परिवृढः।**

हिन्दी-अनुवाद- *राजा (ऊपर की ओर देखकर) नवीन रात्रि रूपी कामिनी की शय्या के समान आकाश में धूप के धुएँ की शोभायुक्त अन्धकार संकेत कर रहा है, तारे फूलों की माला की शोभा प्राप्त कर रहे हैं। सन्ध्या (काल) के सम्बन्ध से चन्द्रमा बीच में मृग (कालेधब्बे) को कस्तूरी के चिह्न (बिन्दी) की तरह धारण करता हुआ सा सिन्दूर मिश्रित स्फटिक मणि की शिला (बिल्लौर के पत्थर) की जड़ में लीला का विस्तार कर रहा है।।२०।।*

तो उस स्थान को बताओ, जब तक चन्द्रमा बुढ़ापे का आलम्बन न ले ले ।

विदूषकः- *इदो पिअवअस्सो।*

सं० छाया- *इतः प्रियवयस्यः।*

हिन्दी-अनुवाद- *इधर आयें प्रिय मित्र।*

(इति परिक्रामतः)
(यह कह कर दोनों घूम जाते हैं।)

विदूषकः- (अग्रतोदृष्ट्वा।) एदं तम्। पविसदु भवम्। उपविसदु पिअवअस्सो।

सं० छाया- एतत्तत्। प्रविशतु भवान्। उपविशतु प्रियवयस्यः।

हिन्दी-अनुवाद- विदूषक (आगे देखकर) यह वह (स्थान) है। आप प्रवेश करें। प्रिय मित्र बैठें।

(तथाकुरूतः।)
(दोनों वैसा करते हैं।)

राजा- अहो रम्यः समयः।

बध्यन्ते कुसुमगृहाणि धूपधूमै
स्तान्येव स्मरदयितानि संस्क्रियन्ते।

धन्यानामपि च सुलोचना समीपे
रोचन्ते सपदि मनोलसद्विलासाः।।२१।।

हिन्दी-अनुवाद- राजा- अहा! समय सुहावना है। कामदेव के प्रिय पुष्पगृह बाँधे (बनाये) जाते हैं और वे ही धूप (सुगन्धित द्रव्य) के धुओं से संस्कृत (सुवासित) किये जाते हैं। फिर सुनयना (सुन्दरी) के समीप भाग्यवानों के मनोवांछित विलास शीघ्र शोभित (पूर्ण) होते हैं। ।।२१।।

विदूषकः- भो वअस्स,

कीराणपञ्जराणां सुरतकलरूओग्घुट्ठवादानुवाद
त्तासेणं किज्जमाणा मणिमय वलही वाहिराईं वडन्ति।

सेज्जाठाणे कआणं फुरइ कलर वो केलिपारावआणं
धण्णाणं हुन्ति कीला जलकण हरणा संपदंचन्द पाआ।।२२।।

सं० छाया- *भो वयस्य!*

कीराणां पञ्जराणां सुरत कलरूतोद्धुष्टवादानुवाद-
त्रासेन क्रीयमाणा मणिमय वलभी बहिर्भागेण पतन्ति।

शय्यास्थाने स्फुरति कलरवः केलिपारावतानां
धन्यानां भवन्ति क्रीडाजलकणहरणाः सांप्रतं चन्द्रपादाः।।२२।

हिन्दी-अनुवाद- *हे मित्र,*

पिंजड़े में अवस्थित तोतों का सुरतकालीन मधुर शब्द से घोषित वादानुवाद के भय से अदलाबदली करते हुए वे मणिनिर्मित चन्द्रशाला के बाहरी हिस्से में गिर पड़ते हैं। शय्या के स्थान में क्रीडा कबूतरों की मधुर ध्वनि उठ रही है। इस समय चन्द्र-किरणें भाग्यवानों के पसीने की बूदों का हरण करने वाली होती हैं।।२२।।

राजा- *''निःश्वस्य''*

उरसि सुरत निद्रालीन कान्तेन भग्नं
धवल गृह गवाक्षस्पन्दिभिश्चन्द्र पादैः

श्रुतमयि भुजशाखा पञ्जरे चारूलीला
मधुरमधर पीडा कूजितं नायताक्ष्याः।।२३।।

राजा- *(लम्बी साँस लेकर।)*

हिन्दी-अनुवाद- *छाती पर रति क्रीडाजन्यनिद्रा से अभिभूत प्रियतम ने धवलगृह की खिड़की के रास्ते टपकने वाली चाँदनी से आनन्द विभोर होकर बाहुलतापाश में मनोहरलीला से मधुर लम्बी आँखों वाली (सुन्दरी) की अधर पीड़ा के (सी सी) शब्दों को भी नहीं सुना ।।२३।।*

(इति सौत्सुक्यम्)

सान्द्र श्रीखण्डपाण्डुस्तन कलशभरात्तारहार प्रकाण्ड-
जोत्स्नापुञ्जाभिषेक द्विगुण परिणमत्कौमुदी मग्नवक्त्रा।

उत्कण्ठाकृष्यमाणा प्रगुण मनसिजादिश्यमानेन काचि-
न्मार्गेण प्राणनाथप्रणयरभसतः सान्द्रलीलां तनोति।।२४।।

हिन्दी-अनुवाद- *(यह कह कर उत्सुकता के साथ।) प्रियतम के प्रति प्रेम की उत्कटता के कारण श्रीखण्ड के चन्दन के सघन लेप से पीताभश्वेत कुच-कलशों के विशाल होने से उस पर स्थित ऊँचे हार की महती ज्योति से स्नात (सराबोर) होने के कारण द्विगुणरूप में परिणत चाँदनी में निमग्न मुखवाली और उत्कण्ठा से खिंची जाती हुई कोई कामिनी बढ़े हुए काम के बताए हुए मार्ग से सघन क्रीड़ा का विस्तार करती है।।२५।।*

यस्यै कुप्यति नूतनस्तरूणिमा लावण्यलक्ष्मीरियं
यत्रापत्रपते न संवदति या प्रेमानुबन्धस्य न।

श्रुत्वैतां च ततां गिरं चिरम सावेतत्किमित्या कुलो
वैक्लव्यं च कुतूहलं च वदनं स्मेरं च धत्ते स्मरः ।।२५।।

(ततः प्रविशति कर्णसुन्दरीवेषा देवी बकुलावलिवेषा हारलता च।)

हिन्दी-अनुवाद- *यह सुन्दरता की लक्ष्मी है जिस पर नवयौवन क्रोध कर रहा है, जो जहाँ प्रेमबन्धन के अनुरूप नहीं होती है (वहाँ) संकोच नहीं करती है। इस विस्तृत वाणी को बहुत काल तक सुन कर वह कामदेव घबराकर विकलता, कौतुक तथा मुस्कुराता हुआ चेहरा धारण करता है।।२५।*

(तदनन्तर कर्णसुन्दरी के वेश में देवी और बकुलावलि के वेश में हारलता प्रवेश करती हैं।

देवी- *सहि हारलदे, अम्हे किं पि सुणन्तिओ चिट्ठम्ह'*

सं० छाया- *सखि हारलते, आवां किमपि शृण्वत्यौ तिष्ठावः।*

हिन्दी-अनुवाद- *सखी हारलता। हम दोनों कुछ सुनती हुई खड़ी रहें।*

राजा- *अये, कथं प्राप्तैव प्राणेश्वरी (मुखमवलोक्य)*

अहह- जानामि विस्मृतिममन्यत पद्मयोनि
लविण्य सारमभिलिख्य मृगाङ्कबिम्बम्।

तेनात्र काकपदकं हरिणच्छलेन
दत्वा लिलेख मुखमायतलोचनं ते।।२६।।

हिन्दी-अनुवाद- *राजा-अरे! क्या प्राणेश्वरी आ ही गयीं। (मुख देखकर) अहह मैं समझता हूँ कि ब्रह्माजी सौन्दर्य के तत्व चन्द्रमण्डल की रचना करके भूल गए। इसलिए (स्मरण होने पर उन्होंने) यहाँ (चन्द्रमा में) मृग के बहाने काकपद (इस प्रकार चिह्न देकर) तुम्हारे लम्बी आँखों वाले मुख की रचना कर दी।।२६।।*

विदूषक- *अहं पिदाव वण्णेमि।*

रइकलहविरोहे रोहिणीकज्जलंसु-
प्पसरपरिगदो व्व ज्झामलो लञ्छणेण।

निजबअण सवण्णं जामिणी डिम्ममेणं
वहइ रूअणिणाहो लालयन्तो व्व अङ्के।।२७।।

सं० छाया- *अहमपि तावद्वर्णयामि।*

रतिकलह विरोधे रोहिणी कज्जलाश्रु
प्रसर परिगत इव श्यामलो लाञ्छनेन।

निजवदन सवर्णे यामिनी डिम्भमेनं
वहति रजनिनाथो लालयन्निवाङ्के।।२७।।

हिन्दी-अनुवाद- *मैं भी अब वर्णन करता हूँ। प्रेम कलह से विरोध होने पर रोहिणी के आँसू से काजल फैलकर मानों काला धब्बा बन गया। अपने मुख के समान उस रात्रि के बच्चे को रात्रि के स्वामी*

चन्द्रमा मानों गोद में दुलराता हुआ धारण कर रहा है।।२७।।

देवी- (आत्मगतम्) हदास, तुज्झ एसो सव्वो एव्व परिप्फन्दो।

सं० छाया- हताश, तवैष सर्व एव परिस्पन्दः।

हिन्दी-अनुवाद- देवी (मन में) नीच तुम्हारी ही सारी करतूत है।

राजा- सखि बकुलावलि, किमियं वामता भवत्सख्याः यदेवमालोक नेनापि न कृतार्थयति।

हिन्दी-अनुवाद- सखी बकुलावली! तुम्हारी सखी की यह कैसी प्रतिकूलता है, जो इस प्रकार दृष्टिपात से भी कृतार्थ नहीं कर रही है?

हारलता- णेहो एत्थ, अवरज्झदि, णो उण वामदा'

सं० छाया- स्नेहोऽत्रापराध्यति, न पुनर्वामता'

हिन्दी-अनुवाद- यहाँ स्नेह अपराध कर रहा है, न कि प्रतिकूलता।

राजा- झटिति कुवलयानि ब्रीडया पीडितत्वा
दधतु कृतकनिद्रां चन्द्रिका संगमेऽपि।

अपि तरलय लीलामज्ज दुन्मज्जदन्तः।
स्फुरित कुसुमचापं चक्षुराकेकराक्षि।।२८।।

हिन्दी-अनुवाद- कुमुद के फूल लज्जा से अभिभूत होने के कारण चन्द्रिका से मिलने पर भी शीघ्र कृत्रिम निद्रा धारण कर ले और हे अधमुँदी आँखों वाली! लीलापूर्वक डूबते-उगते हुए तथा भीतर उद्दीप्त कन्दर्प वाले नेत्र को चञ्चल करो।।२८।।

अपि च,

सुतनु विसृज लज्जां वल्गु वल्गन्तु वाचः
कवचयतु विपञ्चीपञ्चमः श्रोत्रयुग्मम्।

अपि कुरू परिरम्भं चारू रम्भोरू गात्रे
परिणमति कठोरः कैरवेश प्रकाशः ।।२९।।

(इति समन्तादवलोक्य ।आत्मगतम्। अहो निःसीमं रामणीयकम्।

हिन्दी-अनुवाद- *हे सुन्दर शरीर वाली! लज्जा छोड़ दो। वचन मधुरता से बोलें। वीणा का पञ्चम स्वर दोनों कानों को कवच की तरह (अन्य स्वर सुनने से) बचायें और हे केले के वृक्ष के समान जाँघ वाली शरीर में अच्छी तरह (गाढ़) आलिङ्गन करो। चन्द्रमा की जोत्स्ना कठोरता (परिपूर्णता) में परिणत हो रही है।।२६।।*

(यह कह कर चारों ओर देखकर। 'मन में') अहा! सौन्दर्य की सीमा नहीं है।

जयति धनुरधिज्यं भ्रूविलासः स्मरस्य
स्पृशति किमपि जैत्रं तैक्ष्ण्यमक्ष्णोः प्रचारः।

अपि च चिबुकचुम्बी श्यामलाङ्ग्यास्तनोति
स्तनकलशनिवेशः पेशल श्रीः पृथुत्वम्।।३०।।

(इत्यालिङ्गति।)

हिन्दी-अनुवाद- *भौहों का हावभाव या भंगिमा कामदेव के प्रत्यञ्चा से तने हुए धनुष को जीत रहा है। आँखों का संचालन किसी विजयी तीक्ष्णता का स्पर्श कर रहा है और सुन्दरी का ठुड्डी को चूमने वाला तथा मनोहर शोभावाला कुचकलश का स्थापन या विन्यास स्थूलता का विस्तार कर रहा है।।३०।।*

(इत्यालिङ्गति)

देवी- *(प्रकटीभूय) साअदं अज्जउत्तस्य (इति क्षिपति।)*

सं० छाया- *स्वागतमार्यपुत्राय'।*

हिन्दी-अनुवाद- *देवी!(प्रकट होकर) आर्यपुत्र का स्वागत है। (यह कह कर अलग हो जाती है।)*

राजा- (सवैलक्ष्यम्)

स्वयं कृतेऽपराधे तु ज्ञाते धीर्यस्य जायते।
अपत्र पायां महती तद्वैलक्ष्यं वयं स्तुमः ।।३१।।

(विदूषको राज्ञः पक्षश्चाधोमुखस्तिष्ठति।)

हिन्दी-अनुवाद- राजा (लज्जा के साथ) स्वयं के किये हुए अपराध मालूम हो जाने पर लज्जा में जिसकी बड़ी बुद्धि चलती है उसकी निर्लज्जता की हम स्तुति करते हैं।।३१।।

(विदूषक राजा के पक्ष से मुँह नीचे करके खड़ा रहता है।)

राजा- त्वां प्रत्येव मयापि नर्म कृतमित्युक्ते कुतो मन्यसे
निर्दोषोऽहमिति ब्रवीमि सहसा दृष्टव्यलीकः कथम्।
क्षन्तव्यं मयि सर्वमित्यपि भवेदङ्गीकृतोऽयं विधिः
किं वक्तुं मम युक्तमित्यनुगुणं देवि त्वमेवादिश।।३२।।

(इति पादयोः पतितुमिच्छति।)
(देवी साक्षेपं हारलतया सह निष्क्रान्ता)

हिन्दी-अनुवाद- तुम्हारे प्रति मैंने भी हँसी की यह कहने पर तुम कैसे मानोगी? मैं निर्दोष हूँ- यह कहता हूँ तो एकाएक देखे गये अप्रियकार्य को कैसे (सहन करोगी?) मेरा सब क्षमा कर देना। यह भी हो सकता है किन्तु इस विधि को तुम स्वीकार कर चुकी हो (अर्थात् एक बार अपराध क्षमा कर दिया था, अब मैं कैसे कहूँ?) देवि! मेरा क्या कहना उचित होगा, यह तुम्हीं (अपने सहिष्णुता-गुण) के अनुसार आदेश करो।।३२।।

(यह कहकर पैरों पर गिरना चाहता है।)

(देवी खरीखोटी सुना कर हारलता के साथ चली गयीं।)

विदूषक : भो, किं अरण्णरोदणेण। देवी एव्वअणु सरीअदु।

सं० छाया- भोः किमरण्यरोद्नेन। देव्येवानुस्रियताम्।

हिन्दी-अनुवाद- अजी, अरण्यरोदन करने से क्या लाभ ? देवी का ही अनुसरण करें।

राजा- एवमिति।

हिन्दी-अनुवाद- अच्छा।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)
(यह कह कर सब चले गए।)

इति तृतीयोऽङ्कः।
तीसरा अङ्क समाप्त।

चतुर्थोऽङ्कः

(नेपथ्ये)

अवन्ध्या भवतु प्रभातसन्ध्या देवस्य। सम्प्रति

रवितुरगखुराग्र क्षुण्णपूर्वाद्रिधातु-
क्षितिरज इव धत्ते धाम पौरंदरी दिक्।

अपर जलधिवेलोद्धूत डिण्डीरपिण्ड-
भ्रममभृतमरीचिः किं च दत्ते प्रतीच्याम्।।१।।

हिन्दी-अनुवाद- *(नेपथ्य में।)*

महाराज की प्रातःकालिक सन्ध्या सफल हो। इस समय,

पूर्व की दिशा सूर्य के घोड़ों के खुरों के अग्रभागों से खण्डित या चूर्ण की गयी उदयाचल की धातुओं की धरती की धूल के समान तेज को धारण कर रही है और पश्चिम दिशा में चन्द्रमा पश्चिम समुद्र के किनारे उत्पन्न फेनों के पिण्ड का भ्रम दे रहा है। ।।१।।

अपि च- *और भी*

चन्द्रालोकनरागजागरणतः श्रान्तेव कृत्स्नां निशां
प्रालेयानिल सौहृदात्कुमुदिनी निद्रावृता घूर्णते।

अप्येते विदितप्रबोध समय प्रत्यूप भोगावली-
र्गायन्तीव कलस्वरा मधुलिहः पद्माकराणामितः ।।२।।

हिन्दी-अनुवाद- *कुमुदिनी सारी रात चन्द्रमा को देखने के अनुरागवश जागने से मानों थककर ठंढ़े वायु के सौहार्द से निद्राभिभूत होकर झूमती है और ये सूक्ष्म ध्वनि करने वाले भौंरे इधर कमल समूहों के जागने (खिलने) का ज्ञान कराने वाले प्रातःकाल में भोगसूचक पंक्तियों को मानों गा रहे हैं।।२।।*

अपि च- *और भी।*

उन्मृष्टा शयनेषु चित्रसुरतक्रीडाविधेः साक्षिणी
लाक्षारागमयी लिपिः श्रमवशाः पारावताः शेरते।

सर्वं साधकमत्र तु प्रतिविधिं कुर्युः कुरङ्गीदृश-
स्तादृश्यः प्रसरन्ति यद्गुरूजनस्याग्रे शुकानां गिरः।।३।।

हिन्दी-अनुवाद- *शय्याओं पर विविध रतिक्रीडाओं की विधि की साक्षी आलते के रंग की लिपि का प्रयोग किया गया है। परिश्रान्त हुए कबूतर सो रहे हैं। यहाँ सब सिद्ध करने वाले हैं। सुन्दरियाँ विधियों को पूर्ण करें जो गुरूजन के आगे तोतों की वैसी बोलियाँ फैल रही हैं।।३।।*

(ततः प्रविशति विदूषकः)
(तदनन्तर विदूषक प्रवेश करता है।)

विदूषकः- *(सपरितोषम्) साहु अमच्च, साहु! देवीए भाइणेयं कुमारं कण्ण सुन्दरीए समाण वअस्सं अप्पणो सआसे से वेसधारिणं आणअन्तेण तस्स व्व णिवासे कण्णसुन्दरीं मुअन्तेण सव्वं साहिदम्। ता पिअवअस्सस्स चक्कवट्टिभावः सव्वधा अहिमुहो संवुत्तो । अवरं देवीए परिहासादो राक्खिदो अज्ज क्खु महाभावो अ। मए मन्दभाअधेआए वामत्तणेण अज्जउत्तो किलिम्मिदो त्ति कण्णसुन्दरी पदिकि दिगव्भरूअं भाइणेअं परिणाइउं पिअवअस्सो पउत्तो संपदं देवी एव्व विलक्खा हु विस्सदि। ता दुस्सअसंगद निवाहस्स तस्स परिवासवट्टी होमि। (इति निष्क्रान्तः)*

सं० छाया- *साधु अमात्य, साधु! देव्या भागिनेयं कुमारं कर्णसुन्दर्याः समान वयस्क मात्मनः सकाशे तस्या वेषधारिण मानयता तस्यैव निवासे कर्ण सुन्दरीं मुञ्चता सर्वं साधितम्। तत्प्रियवयस्यस्य चक्रवर्तिभावः सर्वथाभिमुखः संवृत्तः। अपरं देव्याः परिहासद्रक्षितोऽद्य खलु महाभावश्च! मया मन्दभागधेय यया वामत्वेनार्यपुत्रः क्लामित इति*

कर्णसुन्दरी प्रतिकृतिगर्भरूपं भागिनेयं परिणाययितुं प्रियवयस्यः प्रवृत्तः। साम्प्रतं देव्येव विलक्षा भविष्यति। तद्दुः सहसंगतनिवासस्य (?) तस्य परिपार्श्ववर्ती भवामि।

हिन्दी-अनुवाद- *विदूषक- (सन्तोष के साथ) वाह अमात्य, वाह। देवी के भानजे कुमार को, जो कर्णसुन्दरी के समान अवस्थावाला तथा उसका वेश धारण किये हुए है अपने पास लाकर उसी के निवास में कर्णसुन्दरी को छोड़कर आपने सब सिद्ध कर दिया है। इसलिए प्रिय मित्र का चक्रवर्ती होना सर्वथा सामने आ गया है। दूसरा, देवी के परिहास से महानुभाव (मित्र) को आज आपने बचा दिया। देवी ने ''मुझ मन्दभागिनी ने प्रतिकूल होकर आर्यपुत्र को क्लान्त कर दिया है'' यह सोचकर कर्णसुन्दरी की मूर्ति के समान रूप वाले भानजे से ब्याह कराने के लिए प्रिय मित्र को प्रवृत्त किया है। अब देवी ही लज्जित होंगी इसलिए दुःसह संगति में निवास करने वाले उनका निकटवर्ती हो जाता हूँ।*

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च)

(इसके अनन्तर राजा और विदूषक प्रवेश करते हैं।)

राजा-

निद्रां लम्भयता चिरं भगवता भालस्थली लोचन-
ज्वाला प्रल्लव संस्तरे पुरजिता पुष्पायुधं मन्मथम्।

हा हा निर्महती कृता विरहिणां यद्वज्रसारान्स्मरः
कोऽप्यन्यः क्षिपति प्रतिक्षणमयं मर्माविधः सायकान्।।४।।

हिन्दी-अनुवाद- *भगवान शङ्कर ने पुष्पों के आयुध वाले कन्दर्प को ललाटस्थ नेत्र (त्रिनेत्र) की ज्वाला रूपी पल्लव के बिछौने पर चिरनिद्रा को प्राप्त कराकर हाय! वियोगियों की बड़ी हानि की, क्योंकि यह*

कोई दूसरा कन्दर्प वज्र के समान कठोर एवं मर्मभेदी वाणों को प्रतिक्षण चला रहा है।।४।।

अपि च- और भी

न प्राप्तः प्रणयापराध समये बाष्पाम्बुधौतोऽधर
श्चित्रं नात्र विपर्ययेण सुतनोर्दृष्टं भ्रुवोस्ताण्डवम्।

निद्रामुद्रितचक्षुषः श्रुतमपि क्रीडावसाने मया
न प्रत्युत्तरमुत्कटाक्षर महो वामः प्रकामं विधिः।।५।।

हिन्दी-अनुवाद- प्रेमापराध के समय आँसू से धुला हुआ अधर नहीं पाया, आश्चर्य है कि यहाँ विपरीतावस्था में सुन्दरी की भौंहो का नृत्य नहीं देखा और क्रीड़ा की समाप्ति होने पर निद्रा से मूँदी हुई आँख वाली का उत्कट अक्षरों वाला 'श्रुतिकटु' प्रत्युत्तर भी नहीं सुना। अहो! विधाता बहुत प्रतिकूल है।।५।।

विदूषकः- अहो, अज्ज वि किं ति उत्तम्मसि। जं मसीविलित्तं कदुअ पिसुणाणं वअणं संप्पण्ण कप्पो जादो मणोरहो।

सं० छाया- अहो! अद्यापि किमित्युत्ताभ्यसि, यन्मषीविलिप्तं कृत्वा पिशुनानां वदनं संपन्नकल्पो जातो मनोरथः

हिन्दी-अनुवाद- हाय! अब भी तुम चिन्ता कर रहे हो जबकि दुष्टों के मुख पर स्याही पोतकर मनोरथ सम्पन्नप्राय हो गया है।

राजा- **युक्त्या यद्यपि मुद्रितो विधिरयं चेत स्तथापि स्थिरा**
माशामेति कुरङ्गशावकदृशः प्राप्तौ न तस्याः क्षणम्।

अङ्कस्थेऽपि जने मनोहृति किमप्युत्प्रेक्षते तत्क्षणा-
ज्ज्ञेयं कापि सुलोचना पुनरसा वायाति दूरे दृशोः।।६।।

हिन्दी-अनुवाद- यद्यपि इस विधि को युक्ति से बन्द कर दिया है तो भी उस मृगनयनी की प्राप्ति के प्रति चित्त क्षण भर भी दृढ़ आशा को

प्राप्त नहीं कर रहा है। मनहरण करने वाले व्यक्ति की गोद में रहने पर भी (चित्त) तत्काल जानने योग्य वस्तु की संभावना करता है कि फिर सुनयना आँखों से दूर आ रही है।६।।

नेपथ्ये

(नेपथ्य में)

सुखाय ग्रीष्मसमयो महाराजस्य! सम्प्रति

सत्पानीयमिति श्रुतेः स्वभवने पूर्व परीक्षाविधौ
त्वद्वैरिक्षिति पालपक्ष्मलदृश स्तृष्णातुराः कानने।

बाष्पाम्भः कणचक्रवालरचना चञ्चत्कपोलान्तरं
मुक्तादाम विलोकयन्ति गमनव्यग्राः कुचाग्रस्थितम् ।।७।।

हिन्दी-अनुवाद- ग्रीष्मकाल महाराज के लिए सुख कारक है। इस समय

हिन्दी-अनुवाद- आपके शत्रुराजा की सुन्दरियाँ पहले अपने भवन में परीक्षा के द्वारा "अच्छा जल है" यह सुनने के पश्चात् (पीती थीं) किन्तु अब जंगल में प्यास से व्याकुल तथा भागने में व्यग्र वे अपने आँसुओं की बूँदों से लोकालोक पर्वत की रचना के समान, चंचल कपोलों के समानान्तर कुचाग्र-स्थित मोती की माला को देखती हैं।

राजा- (सोत्कण्ठम्।)

सपदि दिवसमध्ये पुण्यभाजः सुजन्मा
वितरित रतिलीलोल्लासिना मानसेन।

वर युवतिरमन्दं चन्दनस्यन्द सान्द्र
प्रसृतलवणिमाम्भः पङ्किलाभङ्कपालीम्।।८।।

हिन्दी-अनुवाद- राजा (उत्कण्ठा के साथ) कुलीन उत्तम युवती मध्याह्न में शीघ्र रतिक्रीडा से हर्षित मन से चन्दन के बहने से सघन होकर फैले

हुए पसीने से पङ्किल आलिङ्गन पुण्यात्मा (भाग्यवान) व्यक्ति को खूब देती है।।८।।

'सौत्सुक्यम्'

रम्भास्तम्भ मनोभिराम सहजस्पर्शा यदूरूस्फिजः
संपन्ना गुरूधूपवास विधयो यन्मज्जनार्द्राः कचाः।

यच्चाकैतवशीतलाः कुचभुवः सा कान्तिरेणीदृशः
पुष्पेषोस्तदहो निदाधसमयम्लानस्य जीवातवे।।६।।

हिन्दी-अनुवाद- *मृगनयनी की दोनों जाँघें और नितम्ब कदली स्तम्भ की भाँति मनोहर और सुखस्पर्श हैं जो (उसके) स्नान से गीले तथा अगरू के घूप से सुबासित बाल हैं और जो निर्व्याज (अकृत्रिम) शीतल कुचप्रान्त है, वह कान्ति है। अहो! वह ग्रीष्म ऋतु में मुरझाये हुए कामदेव के लिए जीवन या जीवनदायक ओषधि है।।६।।*

अपि च- *और भी*

ताम्बूल द्रवमुद्रणेन विधुरच्छायो न बिम्बाधर
श्चक्षुः क्षालित कज्जलं जलभरैः पुष्यत्यभिख्यां निजाम्।

कोऽप्यन्यः कबरीभरस्य विगलद्बिन्दोरमन्दो रसः
स्नानान्ते सपदि स्मरास्त्रमनघं किं वा न वामभ्रुवाम् ।।१०।।

हिन्दी-अनुवाद- *(उसका) बिम्बफल (कुँदरू) के समान (लाल) ओष्ठ पान के रस (पीक) से रहित होने पर भी कान्तिहीन नहीं होता। जल के भार से काजल के धुल जाने पर भी आँख अपनी सुन्दरता को पुष्ट करती है। टपकती हुई बूँदों वाले जूड़े का कोई और ही अधिक रस (श्रृङ्गार) है अथवा सुन्दरियों का स्नान के बाद क्या नहीं शीघ्र सुन्दर कामास्त्र हो जाता है।।१०।।*

तत्किमद्यापि चिरयति देवीसमाह्वानम्'

हिन्दी-अनुवाद- *तो क्यों अब भी देवी के आमंत्रण में विलम्ब हो रहा है?*

विदूषकः- *भो, मा उत्तम। देवीए एसो पडिहासो त्ति महन्तो अहिणिवेसो।*

हिन्दी-अनुवाद- *अजी! उतावले मत होओ। देवी का यह परिहास करने का महान दुराग्रह है।*

(प्रविश्य)

(प्रवेश करके।)

चेटी- *जेदु जेदु भट्टा। एदाइं आहरणाइं देवीए पेसिदाइं विवाह जोग्गाइं परिहाइअ विवाहभूमी तुरिदंअलंकरी अदु (इत्याभरणानि समर्पयति।)*

सं० छाया- जयतु जयतु भर्ता। एता न्याभरणानि देव्या प्रेषितानि विवाह योग्यानि परिधाय विवाह भूमिस्त्वरितमलंक्रियताम् ।

हिन्दी-अनुवाद- *स्वामी की जय हो,जय हो। ये विवाहयोग्य आभूषण देवी ने भेजे हैं। इन्हें पहनकर आप शीघ्र विवाहभूमि को अलंकृत करें। (यह कह कर आभूषण समर्पित करती है।)*

राजा- एतन्त्वं गृहाणापरम्। मां समागतं देव्यै निवेदय (इति कण्ठदवतार्य मुक्तादाम समर्पयति।

हिन्दी-अनुवाद- *राजा- यह दूसरा आभूषण तुम ले लो। मैं आ गया। यह देवी से निवेदन करो। (यह कह कर गले से उतार कर मोती की माला दे देता है।)*

(चेटी गृहीत्वा निष्क्रान्ता)

(चेटी लेकर चली जाती है।)

राजा- *(आत्मीयानलंकारान्विदूषकाय दत्त्वा नाट्येनात्मानमलंकरोति। निःश्वस्य।)*

तद्वैवाहिक होमधूमकलनामीलत्क पोलं मुखं
किं लज्जा रसमज्जनादवन मज्जायेत दृग्गोचरम्

यत्पारिप्लव लोचनाञ्चलमिलद्दूर्वाङ्कमङ्के रतेः
सुप्तस्यापि मनोभुवस्त्रिजगतां साम्राज्यदानक्षमम्।।११।।

हिन्दी-अनुवाद- *राजा (अपने आभूषण विदूषक को देकर नाटकीयता के साथ अपने को अलंकृत करता है। लम्बी साँस लेकर) उसके विवाह काल में लगने वाले हवन के धुँए से मुरझाये हुए कपोलों वाला मुख क्या लज्जा रूपी जल में स्नान करने से झुकता हुआ दृष्टिगोचर होगा? जिस चञ्चल नयनों वाली के आँचल में मिली हुई दूर्वा से युक्त अंक (गोद) रति (कामदेव की पत्नी) के अंक में सोये हुए कामदेव को तीनों लोक का साम्राज्य देने में समर्थ है।।११।।*

विदूषकः- *किं तुंह विवाह विहीए अग्गिपज्जालणेण का करेसि। जधा तं समप्पइ देवी तथा सव्वधा गिह्णसु।*

सं० छाया- *किं त्वं विवाह विधयेऽग्निप्रज्वालनेन वा करोषि। यथा तां समर्पयति देवी तथा सर्वथा ग्रहाण।*

हिन्दी-अनुवाद- *क्या तुम विवाह की विधि के लिए या अग्नि प्रज्वालन के द्वारा कर रहे हो? जिस प्रकार देवी उसे समर्पित करें वैसा सब प्रकार से करो।*

(नेपथ्ये।)
(नेपथ्य में)

गीयन्तां मङ्गलानि स्फुरतु चतुरता ताण्डवे लासिकानां
सिच्यन्तां बाह्यकक्षाः क्षितिपतिभिरपि क्षिप्यतां पुष्पवृष्टिः।

संधैः स्वः कन्यकानां परिणयविधये मण्डपोद्देशमेति
प्रेयश्चित्तानुवृत्तिव्रतनिहितमतिः सस्मिता येन देवी।।१२।।

हिन्दी-अनुवाद- *मङ्गलगीत गाये जायँ, नर्तकियों की पटुता नृत्य में प्रस्फुटित हो (चमके)। पृथ्वीपतिगण बाहरी कक्षाओं को सींचें, स्वर्ग की बालाओं का समूह फूलों की वर्षा करे, जिसलिए कि प्रियतम के चित्त के अनुसरण में रूपव्रतानुष्ठान में बुद्धि को लगाये हुई मुस्कुराती हुई महारानी विवाहविधि की सम्पन्नता के लिए मण्डप स्थान को जा रही है।।१२।।*

विदूषकः भो, णी संदेहं जाणसु वञ्चिदा देवी। ता एहि। तुरिदं गच्छम्ह। इदो इदो।

सं० छाया- भोः निःसंदेहं जानीहि वञ्चिता देवी। तदेहि। त्वरितं गच्छावः। इत इतः।

हिन्दी-अनुवाद- अजी निःसंदेह जानिए कि देवी ठगी गयीं। इसलिए आइए। शीघ्र चलें। इधर से, इधर से।

(इति परिक्रामतः)

(ततः प्रविशति देवी चेटी च विमवतश्च परिवारः)

(यह कह कर दोनों घूम जाते हैं।)

(तदनन्तर, देवी, चेटी और वैभव के अनुसार परिवार प्रवेश करते हैं।)

देवी- सहि हारलदे, पज्जत्तं विप्प लम्भेण अज्जउत्तस्स। (इति पुरोऽवलोक्य) एसोसंपत्तो भट्टासमं बम्भणविडेण।

सं० छाया- सखि हारलते, पर्याप्तं विप्रलम्भेनार्यपुत्रस्य। एष संप्राप्तो भर्ता

समं ब्राह्मण विटेन।

(इति सावरण तिष्ठतः)

हिन्दी-अनुवाद- सखी हारलता! आर्यपुत्र का वियोग बहुत हो गया। (यह कह कर, आगे देखकर) ये स्वामी धूर्त ब्राह्मण के साथ आ गये।

(यह कह कर पर्दे के साथ अवस्थित हो जाती है।)

विदूषकः एसा देवी। उपसप्पदु भवम्।

सं० छाया- एषा देवी! उपसर्पतु भवान्।

हिन्दी-अनुवाद- ये देवी हैं। समीप जाँय।

(इति तथा कुरुतः)

(यह कह दोनों वैसा करते हैं।)

देवी- (उत्थाय) जेदु जेदु अज्जउत्तो।

सं० छाया- जयतु जयत्वार्यपुत्रः।

हिन्दी-अनुवाद- (उठकर) आर्य पुत्र की जय हो, जय हो।

(सर्वे यथोचितमुपविशन्ति)

(सब यथोचित रीति से बैठ जाते हैं।)

देवी- (अञ्जलि बद्ध्वा) जं मए किं पि विरूद्धं आअरिदं तस्स दण्डं कर्णसुन्दरीं समप्पेमि।

सं० छाया- यन्मया किमपि विरूद्ध मा चरितं तस्य दण्डं कर्णसुन्दरीं समर्पयामि।

हिन्दी-अनुवाद- (अञ्जली बाँधकर) मैंने जो कुछ भी विरूद्ध आचरण किया उसके दण्डस्वरूप कर्णसुन्दरी को समर्पित कर रही हूँ।

राजा- महानुभावप्रकृतिरसि! यदभिरूचितं तदा चर!

हिन्दी-अनुवाद- राजा- आप स्वभाव से ही महानुभाव हैं। जो आपको रुचे वही आचरण करें।

(प्रविश्य)
(प्रवेश करके)

प्रतीहारी- अमच्चो दुआरे चिट्ठदि।

सं० छाया- अमात्यो द्वारे तिष्ठति।

हिन्दी-अनुवाद- अमात्य द्वार पर खड़े हैं।

राजा- तूर्णं प्रवेशय।

हिन्दी-अनुवाद- शीघ्र प्रवेश कराओ

(इति प्रतीहारी निष्क्रान्ता)
(यह कह कर प्रतीहारी चली गयी।)

(ततः प्रविशत्यमात्यः प्रतीहारी च)
(तत्पश्चात् अमात्य और प्रतीहारी का प्रवेश होता है।)

प्रतीहारी- इदो इदो अमच्चो।

सं० छाया- इत इतोऽमात्यः।

हिन्दी-अनुवाद- इधर से, अमात्य इधर से।

(इति परिक्रामतः)
(यह कर कर दोनों घूमते हैं।)

प्रतीहारी- एसो भट्टा। उपसप्पदु अमच्चो।

सं० छाया- एष भर्ता! उपसर्पत्वमात्यः।

हिन्दी-अनुवाद- ये स्वामी हैं, अमात्य समीप जाँय।

अमात्यो यथोचितमुपसर्पति।

(अमात्य यथोचित रीति से समीप जाता है।)

राजा- आसनमासनम् ।

हिन्दी-अनुवाद- राजा- आसन, आसन।

(प्रतीहारी आसनं दत्वा निष्क्रान्ता।)

(प्रतीहारी आसन देकर चली जाती है।)

देवी- सहि, अणेसु कण्णसुन्दरिं जेण अमच्चस्स पुरदोसमप्पिअ निरवराहा होमि।

सं० छाया- सखि, आनय, कर्णसुन्दरीं येनामात्यस्य पुरतः समर्प्य निरपराधा भवामि।

हिन्दी-अनुवाद- देवी-सखी! कर्णसुन्दरी को ले आओ जिससे अमात्य के सामने समर्पित करके निरपराध हो जाऊँ।

चेटी- णव वहुत्ति जेव्व जवणिअन्तरे धरिदा सा (इति निष्क्रम्य तां गृहीत्वा प्रविश्य च') देवि पडिच्छसु एणम्।)

सं० छाया- नववधूरित्येव जवनिकान्तरे धृता सा! देवि प्रतीच्छैनाम्।

हिन्दी-अनुवाद- चेटी– नववधू हैं, यह समझ कर पर्दे के भीतर वह रखी गयी हैं। (यह कह बाहर जाकर उसे लेकर प्रवेश करके) देवी, इसे स्वीकार करें।

देवी- (सलज्जां नायिकामन्तिके निवेश्य स्वगतम्) अच्चरिअम्। पच्चक्खं सेव्वएसा। अहो! माहप्पं कवडनाडअस्स।

सं० छाया- आश्चर्यं। प्रत्यक्षं सैवैषा अहो! माहात्म्यं कपटनाटकस्य।

हिन्दी-अनुवाद- देवी (लज्जाशील नायिका को पास बैठाकर मन में) आश्चर्य है। यह तो वही है। यह तो वही है। अहो छलपूर्ण नाटक की (यह) महिमा है।

राजा- माञ्जिष्ठी लिपिरोष्ठयोः कवचितं चन्द्रस्य कान्त्या मुखं
भ्रूयुग्मं मकरध्वजस्य धनुषासर्वाङ्ग मालिङ्गितम्।
लावण्यं कुचयोः सुवर्णकलशीमानेन नूनं कृतं
नो जाने कियतीं पपौ कुवलयच्छायां कटाक्षच्छविः ।।१३।।

हिन्दी-अनुवाद- *(उसके) ओष्ठों का बाह्य रूप मजीठ के रंग का है, मुख चन्द्रमा की कान्ति से आवृत (सुरक्षित), दोनों भौंहें कन्दर्प के धनुष से पूर्ण रूपेण आलिंगित हैं। दोनों कुचों का सौन्दर्य निश्चित ही सोने के छोटे घड़े के मान से रचा गया है और कटाक्ष की शोभा तो कितनी कुमुद पुष्प की शोभा को पी चुकी है, यह मैं नहीं जानता।।१३।।*

(विहस्य)
(हँसकर)

देवी निसर्ग तरला तरला यताक्षी
संवादमिच्छति मदीक्षणवञ्चनाय।
प्रत्यन्तरेक्षणमपि क्षणमेतदीय्
सादृश्यनिर्मिति विधौ विधिरप्यशक्तः ।।१४।।

हिन्दी-अनुवाद- *स्वभाव से चंचल और चंचल एवं लम्बी आँखों वाली देवी मेरे देखने को छलने के लिए सादृश्य और क्षण भर बाह्य दर्शन भी चाहती हैं। इस (वाला) की समानता के निर्माण करने में विधाता भी असमर्थ हैं।*

देवी- *एसा मए तुज्झ समप्पिदा भजसु णं चउसमुद्दपुह वीए रत्तम्। (इति हस्ते नायिकां समर्पयति।)*

सं० छाया- *एषा मया तुभ्यं समर्पिता। भजैतच्चतुः समुद्रपृथिव्या रत्नम्।*

हिन्दी-अनुवाद- *यह मैंने तुम्हें समर्पित कर दी। चार समुद्रों वाली पृथ्वी के इस रत्न को ग्रहण करो। (यह कह कर हाथ में नायिका को समर्पित करती है।)*

राजा- *(गृहीत्वा) प्रसन्नं देव्या*

हिन्दी-अनुवाद- *(ग्रहण करके) देवी प्रसन्न हुई (अर्थात् यह देवी का प्रसाद है।)*

देवी- *अमच्च, जुत्तं कदम्।*

सं० छाया- *अमात्य, युक्तं कृतम् ?*

हिन्दी-अनुवाद- *अमात्य ठीक किया न ?*

अमात्यः *किमुच्यते।*

हिन्दी-अनुवाद- *अमात्य- क्या कहती हैं?*

वंशे यस्मिन्नजनि भवती मौक्तिकोत्सिक्तकान्तिः
कीर्तिर्यस्य च्छुरयति सुरक्ष्माधरेन्द्रस्य वक्षः

चालुक्यानां वसुमति गृहे किं च तेषां वधूस्त्वं
यैर्निश्चिन्तः कलयति हरिः सागरे नाम शय्याम्।।१५।।

हिन्दी-अनुवाद- *जिस वंश में मोतियों से बढ़ी चढ़ी कान्तिवाली आपने जन्म लिया, जिसकी कीर्ति सुमेरू पर्वत के वक्षःस्थल को आच्छादित किए हुए है और आप उन चालुक्य नृपतियों के धनाढ्य घर में कुलवधू हैं जिनके कारण निश्चिन्त हुए विष्णु समुद्र में शय्या लगाते हैं।*

विदूषकः *संवृत्तो विवाहो। ता सोत्थिवाअणस्सअवसरो।*

सं० छाया- *संवृत्तो विवाहः। तत्स्वस्तिवायन[1]स्यावसरः।*

हिन्दी-अनुवाद- *विदूषक- विवाह सम्पन्न हो गया। अब स्वस्तिवायन का अवसर है।*

देवी- *(स्वगतम्) हदास, पेक्खिस्ससि विआहम्।*

सं० छाया- *हताश् पेक्षिष्यसे विवाहम्।*

१- उत्सव के अवसर पर देवता या ब्राह्मण को दिया गया मिष्टान्न।

हिन्दी-अनुवाद- *(मन में) नीच, विवाह देखोगे ?*

राजा- (स्वगतम्) मदन कनकपुङ्खाः सन्त्वसंख्याः पृषत्काः
स्फुरतु विजयलक्ष्मी कर्मठं कार्मुकं ते।

अपि च सहचराणां कापि संपच्चकास्तु
प्रियजनविरहा धेरेष जातो यदन्तः।।१६।।

हिन्दी-अनुवाद- *राजा (मन में) हे कामदेव! तुम्हार सुवर्णपंखी बाण असंख्य हो जाँय, विजयलक्ष्मीदायक कर्मठ धनुष संचरित हो और सहचरों की विलक्षण सम्पदा दीप्यमान हो, जिसलिए कि प्रिय व्यक्ति के वियोगजन्य मनोव्यथा का यह अन्त हो गया है।।१६।।*

अमात्यः- *(आत्मगतम्) अवसरः प्रकाशनस्य (प्रकाशम्) कः कोऽत्र ?*

हिन्दी-अनुवाद- *अमात्य- (मन में) यह अवसर प्रकाशित करने (बता देने) का है (प्रकट रूप से) यहाँ कौन है जी ?*

(प्रविश्य)
(प्रवेश करके)

प्रतीहारी- *आणवेदु अमच्चो।*

सं० छाया- *आज्ञापयत्वमात्यः।*

हिन्दी-अनुवाद- *प्रतीहारी-अमात्य आज्ञा करें।*

अमात्यः- देवी भागिनेयः कुमारः कौतुकेनानीत आसीन्मयास्वमन्दिरे बन्धुसंगतो न वेति जानीहि।

हिन्दी-अनुवाद- *अमात्य– देवी के भानजे कुमार को मैं कौतुक से ले आया था। वह अपने भवन में बन्धुओं के साथ हैं या नहीं ? यह पता लगाओ।*

प्रतीहारी- *संपदं जेव्व मए हिण्डन्तो दिट्ठो। (इति निष्क्रान्ता।)*

सं० छाया- सांप्रतमेव मया हिण्डन्दृष्टः।

हिन्दी-अनुवाद- प्रतीहारी– अभी अभी मैंने उनको इधर (चलते-फिरते) टहलते हुए देखा था। (यह कह कर चली जाती है।)

देवी- (आत्मगतम्) हा, हदम्हि मन्दभाइणी। मए कधिदं जेव्व कैदवंत्ति पच्चक्खं सेव्व एसा त्ति। ता वञ्चिदम्हि किं कीरदि (इति धैर्यमवलम्बते।)

सं० छाया- हा, हतास्मि मन्दभागिनी। मया कथितमेव कैतवमिति प्रत्यक्षं सैव एषे ति। तद्वञ्चितास्मि। किं क्रियते ?

हिन्दी-अनुवाद- देवी–(मन में) हाय, में अभागिन मारी गयी। मैंने कहा ही था कि छलना है। यह साक्षात् वही है इसलिए मैं ठगी गयी हूँ। क्या करूँ ? (यह कह कर धैर्य धारण करती हैं।)

(प्रविश्य)
(प्रवेश करके)

प्रतीहारी- गज्जण णअरं जेदुं गअस्स रुच्चिकस्स सआसादो पहाणो वीरसिङ्घो आअच्छदि।

सं० छाया- गर्जन नगरं जेतुं गतस्य रूच्चिकस्य सकाशात्प्रधानो वीर सिंह आगच्छति।

हिन्दी-अनुवाद- गर्जन नगर को जीतने के लिए गए हुए रुच्चिक के पास से वीर सिंह आये हैं।

अमात्यः- अविलम्बितं प्रवेशय ।

हिन्दी-अनुवाद- अमात्य– शीघ्र प्रवेश कराओ।

(प्रतीहारी निष्क्रम्य वीरसिंहेन सह प्रविशति।)

(प्रतीहारी निकलकर वीर सिंह के साथ प्रवेश करती है।)

वीर सिंहः　　जयति देवः साम्राज्येन।

हिन्दी-अनुवाद- वीर सिंह महाराज साम्राज्य के साथ विजयी हो रहे हैं।

अमात्यः　　आसनम्

हिन्दी-अनुवाद- अमात्य- आसन (दो)

(प्रतीहारी आसनं दत्त्वा निष्क्रान्ता)

(प्रतीहारी आसन देकर बाहर चली गयी।)

राजा-　　वीर सिंह, निवेदय वृत्तान्तम्।

हिन्दी-अनुवाद- राजा- वीर सिंह, वृत्तान्त बतलाओ।

वीर सिंहः　　यथा तावदितो निर्गत्य गर्जनाधिपति बलस्यास्मद्बलं सिन्धो रोधसि मिलितम् तथा देवाय निवेदितमेव अनन्तरं महति समर संमर्दे।

हिन्दी-अनुवाद- वीर सिंह– जिस प्रकार यहाँ से निकलकर गर्जनपति की सेना हमारी सेना से सिन्धु नदीके तट पर मिली वह महाराज को निवेदन कर ही चुका हूँ। अनन्तर युद्ध के महान जमघट होने पर,

पांसूनां सूचिभेद्यः सकलमपि कुलक्ष्माभृतां छादनेच्छा-
बद्धोत्साहैः प्रवाहैरसुषिरम भवद्व्योमसीमान्तरालम्।

द्वारश्रेणी निवेशश्रियमथ धरणीमण्डलं वीर्ययाता,
जातोर्वी तेऽनुवीर (?) विरचित विवरास्तत्रचाहो मुहूर्तम्।।१७।।

हिन्दी-अनुवाद- सूई के द्वारा बींधने योग्य धूलों से सकल कुलपर्वतों को ढ़क लेने का इच्छाबद्ध उत्साह- प्रवाहों से आकाश की सीमा का मध्यमाग छेद रहित हो गया। अनन्तर पृथ्वीमण्डल ने द्वार पंक्तियों के निवेश की शोभा को धारण कर लिया। आश्चर्य है कि वहाँ दो

घड़ी में आपके अनुयायी वीरों के द्वारा पराक्रम से प्राप्त पृथिवी में बिल का निर्माण हो गया।।१७।।

ततश्च- उसके पश्चात्

किं दोर्वीर्येण मौर्वी विरचय धनुषि त्वामहं न प्रहर्ता
निःशङ्कस्त्वं रथस्थः प्रहर ननु यतः प्राक्प्रहारप्रियोऽहम्।
वीराणामित्युदाराः सुचिरमुदचरन्नाककान्तानिकायैः
स्निह्यत्कर्णा विमानप्रणिहित वदनैर्भाविता स्तत्र वाचः।।१८।।

हिन्दी-अनुवाद- बाहु शक्ति क्या (दिखायें) ? तुम धनुष पर डोरी चढ़ाओ मैं तुम पर प्रहार करने वाला नहीं हूँ, तुम निःशङ्क होकर रथ पर चढ़ कर प्रहार करो क्योंकि पहले प्रहार करना मुझे प्रिय नहीं है, इस प्रकार धीरों के उदार वचन वहाँ दीर्घकाल तक उच्चरित होते रहें। (उन) कर्णप्रिय वचनों को विमान में रखे मुखवाली अप्सराओं के समूह ने संव्यक्त किए।।१८।।

राजा- ततः

हिन्दी-अनुवाद- राजा - तब क्या हुआ ?

वीर सेनः- क्रमेण

हिन्दी-अनुवाद- वीरसेन - क्रमशः

नीरन्ध्रं रून्धते स्म त्रुटितमिव तडिज्योतिषा व्योमरन्ध्रं
शस्त्राणि त्रासताभ्यद्दिनकर तुरगश्रेणि दूरे क्षितानि।
तीक्ष्णासिच्छिन्नमुह्यद्भट वरवरणारम्भसंभार भाजां
येन स्वः स्वैरिणी नामवतरणविधावप्य भून्नावकाशः ।।१६।।

हिन्दी-अनुवाद- आकाश का छिद्र बिजली की ज्योति से मानों टूटकर बिना छेद के अवरुद्ध हो गया। शस्त्रों के भय से उद्विग्न सूर्य के अश्वों की

पंक्ति ने दूर से (ही) देखा। तीक्ष्ण खड्गों से कटने पर मूर्च्छित हुए श्रेष्ठ वीरों के वरण करने की आरम्भिक सामग्री प्राप्त करने वाली स्वर्ग की वेश्याओं को उतरने का अवकाश भी नहीं मिला। ।।१८।।

(देवी स्मयते)

(देवी मुस्कराती हैं।)

विदूषकः उक्कम्पिदोम्हि।

सं० छाया- उत्कम्पितोऽस्मि।

हिन्दी-अनुवाद- विदूषक - मैं काँप रहा हूँ।

राजा- ततः ?

हिन्दी-अनुवाद- राजा– तब ?

वीर सेनः **कबन्ध स्कन्धेषु स्रवदतिघनस्त्यानरूधिर**
स्थिरारम्भं गुह्यावनिधरशिरः श्रेणिमभितः।
पुरो दृष्ट्वा दृष्ट्वा सुरयुवतयः किं नरकुल-
क्षयाशङ्कातङ्कात्क्षुभित मनसः क्षिप्रम भवन्।।२०।।

हिन्दी-अनुवाद- कबन्धों (बिना सिर के धड़ों) से बहते हुए अत्यन्त घने और ठोस रक्त के स्थिर होने के आरम्भ को गुह्य पर्वत की शिखर पंक्तियों के चारों ओर (अपने) आगे देख देख कर देवयुवतियाँ किन्नर वंश के नाश के आतङ्क से शीघ्र क्षुब्धचित्त वाली हो गयीं।

अपि च- और भी

गायन्तीषु सुरङ्गनासु मधुरं सौगन्ध्यवत्तन्मुख
श्वासोल्लासिनि षट् पदावलिरवे वेणुध्वनिस्पर्धिनी।
धीरं वैरि कबन्धताण्डवविधौ सङ्ग्रामरङ्गेलस-
त्सेनानां गजगर्जितेन मुरजध्वानानुकारो धृतः ।।२८।।

हिन्दी-अनुवाद- *मधुर स्वर में गायन करती हुई देवबन्धुओं के सुरभित मुखश्वासों से उल्लसित भ्रमरावली के शब्दों के वंशी की ध्वनि की स्पर्धा करने वाले होने पर युद्धमंच पर शत्रुकबन्धों के ताण्डवनृत्य में नाचती हुई सेनाओं ने गजगर्जन के मृदङ्ग की ध्वनि का अनुकरण किया।।२१।।*

राजा- *ततश्च*

हिन्दी-अनुवाद- *राजा– तब क्या हुआ?*

वीरसेनः *तत्कृतं कर्म रुच्चिकेन येन विस्मिताः सुराः।*

हिन्दी-अनुवाद- *वीरसेन– रुच्चिक ने वह कार्य किया जिससे देवता लोग आश्चर्य करने लगे।*

राजा- *ततश्च*

हिन्दी-अनुवाद- *राजा– फिर ?*

वीरसेनः **त्रातारं जगतां विलोल वलयश्रेणी कृतैकारवं**
सोन्मादामर सुन्दरी भुजलता संसक्तकण्ठग्रहम्।

कृत्वा गर्जनकाधिराजमधुना त्वं भूरिरत्नाङ्कुर-
च्छाया विच्छुरिताम्बुराशि रशनादाम्नः पृथिव्याः पतिः।।२२।।

हिन्दी-अनुवाद- *संसार के पालक तथा चञ्चल कंकण की श्रेणी के समान किये हुए एक शब्द वाले (अर्थात् एक मात्र आज्ञा देने वाले प्रभु) गर्जन के अधिपति को मदमत्त स्वर्वेश्या की भुजलतापाश में चिपके हुए कण्ठवाला बना कर (अर्थात् स्वर्ग भेजकर) अब आप अनेक रत्नों के अंकुरों की कान्ति से शोभित समुद्र रूपी करधनी वाली पृथिवी के पति हो गये हैं।।२२।।*

(सर्वे मोदन्ते। विदूषको नृत्यति)
(सब हर्षित होते हैं। विदूषक नाचने लगता है।)

अमात्यः *किं ते भूयः प्रियमुपकरामि।*

हिन्दी-अनुवाद- *आपका पुनः क्या उपकार करूँ ?*

राजा- **दृष्टं देव्या किमपि भुवनाश्चर्यतत्त्वं महत्वं**
त्वब्धा लक्ष्मीरिव मनसिजक्ष्माभुवः पक्ष्मलाक्षी।

एकच्छत्रं समजनि महीमण्डलं तत्प्रियं मे
किं स्यादस्मात्परमपि वरं यत्तु याचे भवत्तः।।२३।।

हिन्दी-अनुवाद- *राजा– संसार के आश्चर्य तत्व अनिर्वचनीय महत्व को देखा। कामलोक की सुन्दरी लक्ष्मी के समान प्राप्त हुई। पृथ्वीमण्डल एक छत्र (एकतंत्र राज्य) बन गया। इससे बढ़कर प्रिय मुझे क्या होगा जो मैं दूसरा भी वरदान आप से माँगू?।।२३।।*

तथापीदमस्तु-

हेलाभ्यस्त समस्त शास्त्रगहनः साहित्य पाथोनिधि-
क्रीडालोडनपण्डितः प्रियतमः श्रृङ्गारिणीनां गिराम्।

एकैकेन दिनेन निर्मित्त महाकाव्यादिरव्याहत-
प्रागल्भ्यस्थिति विश्रुतः स्थिरमतिः पार्श्वेविदग्धः कविः।।२४।।

हिन्दी-अनुवाद- *तो भी यह हो। खेल खेल में गहन (दुर्ज्ञेय) शास्त्रों को अभ्यस्त कर लेने वाला साहित्यरूपी समुद्र में क्रीड़ापूर्वक अवगाहन करने वाला श्रृङ्गाररस के वचनों का अत्यन्त प्रिय एक एक दिन में महाकाव्य आदि की रचना करने वाला अव्याहत प्रगल्भता के विषय में विख्यात और कुशाग्रबुद्धि कवि बगल (निकट) में रहे।।२४।।*

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)
(यह कह कर सब चले जाते हैं।)

"इति चतुर्थोऽङ्कः"
।। "चतुर्थअङ्क सम्पन्न हुआ" ।।